मानसदर्पण

रामचरितमानस चतुश्शती महोत्सव के उपलक्ष्य में

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति के पोषक

एवं

भारत के स्वास्थ्यमंत्री

डा० कर्णसिंह

संपादक

बदरीनाथ शास्त्री (कल्ला)

एम० ए० एम० ओ० एल० बी० एड०

कश्मीर प्रादेशिक मानस समिति, श्रीनगर।

मानस-दर्पण

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति के हिमालय पुत्र

एवं

भारत के स्वास्थ्यमंत्री

डा० कर्णसिंह

संपादक

बदरीनाथ शास्त्री (कल्ला)

एम० ए० एम० ओ० एल० बी० एड०

संपादक, कश्मीरी शब्दकोश विभाग

जम्मू व कश्मीर ललित कला संस्कृति व साहित्य

अकादमी, श्रीनगर, कश्मीर

कश्मीर प्रादेशिक मानस समिति, श्रीनगर।

धर्मार्थट्रस्ट के सहयोग से मुद्रित तथा प्रकाशित ।

प्रथम संस्करण १०००

वर्ष १९७६

मूल्य : तुलसी का अनन्य प्रेम

मुद्रक : फाइन आर्ट प्रेस, हब्बाकदल, श्रीनगर

अनुक्रमणिका

स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन
मंत्री
भारत
नई दिल्ली-110011
MINISTER OF
HEALTH AND FAMILY
PLANNING
INDIA
NEW DELHI-110011

तुलसी का 'रामचरितमानस' एक युगीन महाकाव्य है, जो अपने युग का सम्यक् प्रतिनिधित्व ही नहीं करता अपितु समाज की कतिपय सार्वकालिक विकृतियों के निराकरण का भी उसमें सन्निवेश है। इस ग्रन्थ का एक विस्तृत आयाम है, व्यक्ति से लेकर समष्टि तक, कुटुम्ब से लेकर एक विशाल देश तक यह व्याप्त है। यदि हम यह कहें कि एक काल में बैठकर सर्वकाल के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया तो इसमें अत्युक्ति नहीं।

कोई भी कृति अपने समय में बहुचर्चित एवं किसी काल विशेष, धर्म विशेष के लिए उपयोगी होती ही है, परन्तु उत्कृष्ट साहित्य इससे भी आगे जाकर अपना स्थायित्व बनाए रखता है। काल की कसौटी पर यह स्थायित्व तथा उपादेय अस्तित्व रामचरितमानस में परिलक्षित होते आया है। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी' की बात से साहित्य भी प्रभावित होता रहता है। व्यक्ति अपने विचार से कभी कभी अपनी व्याख्या करते रहते हैं, परन्तु व्यक्ति विशेष की अपनी संकीर्ण और क्षुद्र अनुभूति को साहित्यस्रष्टा की अनुभूति से नहीं जोडना चाहिए, उदात्त प्रतिभासम्पन्न साहित्य को भावुकता एवं आक्षेपों से बचाना ही चाहिए।

मुझे प्रसन्नता है कि श्री बदरीनाथ शास्त्री 'रामचरितमानस' की मुख्य-विचारधाराओं तथा मुख्य सिद्धान्तों एवं आदर्शों के अनुरूप लेखों का संकलन एवं संपादन कर पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि शास्त्री जी का यह प्रयास सफल तथा उपादेय होगा।

कर्णसिंह

नई दिल्ली,
३१ मार्च, १९७६

टी० टी० कालेज में डा० कर्णसिंह पारितोषिक वितरण करते हुए

जम्मू में धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा आयोजित मानस चतुःशती समारोह

रामचरितमानस चतुःशती का समारोह राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश विदेशों में रचाया गया। भारत में यह महोत्सव रामनवमी के पुण्य-दिवस के उपलक्ष्य में ११ अप्रैल १९७३ से वर्षपर्यन्त मनाया गया। जम्मू कश्मीर राज्य में भी यह समारोह धर्मार्थ ट्रस्ट की ओर से श्रीरघुनाथ मन्दिर (जम्मू) के विशाल प्राङ्गण में उल्लासपूर्वक निरन्तर तीन दिन मनाया जाता रहा। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :- ११ अप्रैल १९७४ ई० को सायं साढे पांच बजे से साढे सात बजे तक "तुलसी संगीतसन्ध्या" के अन्तर्गत विभिन्न संस्थाओं :- दुर्गासंगीतविद्यालय, कन्या महाविद्यालय, कन्या महाविद्यालय गांधीनगर, म्यूजिक इन्स्टिच्यूट कल्चरल अकादमी, सनातनधर्मसभा कन्या महाविद्यालय, सरस्वती संगीतविद्यालय, दीवान बदरीनाथ विद्यामन्दिर ने तुलसीरचित पदावली के माधुर्य से जन-मानस को आह्लादित किया। १२ अप्रैल को प्रातः ९ बजे से "मानस" का अखण्ड पाठ आरम्भ किया गया, जिसमें विद्वानों ने सहर्ष सहयोग देकर अपनी सहृदयता का परिचय दिया। तदनन्तर जम्मू विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री जे० डी० शर्मा की अध्यक्षता में 'मानस' सम्बन्धी परिसंवाद हुआ, जिसमें स्थानीय गण्य-मान्य रामायणप्रेमी सज्जनों ने बडे उत्साहपूर्वक समारोह को सुशोभित किया। परिसंवाद में भाग लेने वालों के नाम ये हैं :— डा० वेदकुमारी, डा० संसारचन्द, श्रीश्यामलाल शर्मा, श्रीधर्मचन्द्र प्रशान्त। तत्पश्चात् अध्यक्ष महोदय ने भावपूर्ण शब्दों में 'मानस' के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए मानसकार की महिमा का बखान किया और तुलसी के परमस्नेही काशी के भूमिहार टोडर को विशेष श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। जिनके भगीरथ-प्रयत्न से आज यह अमरग्रन्थ जनसाधारण के जीवन का काव्य बन सका है। वैशाखी के पावन पर्व पर प्रातः ९ बजे से १२ बजे तक 'मानस' का अखण्ड पाठ समाप्त हुआ, जिसके उपरान्त सुन्दर काण्ड के पाठ से होमयज्ञ विधिवत् सम्पन्न हुआ। उसीदिन सायं सवा छः बजे से साढे सात बजे तक मङ्गला-चरणपूर्वक सामूहिक रामचरितमानस का पाठ माननीय डा० कर्णसिंह जी, केन्द्रीय स्वास्थ्यमन्त्री, की अध्यक्षता में हुआ। तुलसी और मानस के सम्बन्ध में डा० संसारचन्द जी ने सारगर्भित भाषण किया, जिसमें तुलसीदास के काव्य

और उनकी कृतियों की विशद व्याख्या की गई। अन्त में सभापति महोदय माननीय डा० कर्णसिंह जी ने तुलसीदास की महिमा का गान करते हुए 'रामचरितमानस' के महत्त्व पर प्रकाश डालकर तुलसी की कृति में लोकमङ्गल की भावना की भूरि भूरि प्रशंसा की और मानव जीवन के साथ सामञ्जस्य स्थापित करते हुए मर्यादा पूर्ण जीवन और सामाजिक अनुशासन पर बल दिया। उन्होंने तत्कालीन भारत की सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक परिस्थितियों की गम्भीर आलोचना करते हुए तदनुकूल क्रान्ति को श्रेयस्कर बताया और सांस्कृतिक पक्ष का पोषण किया; एवं च तुलसीदास के रामचरितमानस की प्रेरणात्मक भावधारा का उत्कर्षतासूचक जयघोष किया और वर्तमान परिस्थितियों में जीवन के मूल आदर्शों को हृदयङ्गम बनाते हुए वीरतापूर्वक संघर्षमय जीवनयापन पर बल दिया। इस संदर्भ में उन्होंने युवकसमाज को वर्तमान परिस्थितियों से जूझने का आवाहन किया तथा उन्हें मूल आदर्शों की रक्षाहेतु नैतिकमर्यादा के पालन करने की प्रेरणा की, जिससे भारत के अतीत गौरव की रक्षा हो सके, और आधुनिक युग में संसार के अन्य समुन्नत देशों की भांति वह उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते हुए स्वाभिमानपूर्वक अपना समुचित स्थान प्राप्त कर सके।

कश्मीर में मानस चतुःशती समारोह

कश्मीर प्रादेशिक समिति की ओर से समायोजित रामचरितमानस चतुःशती का समारोह सत्थू बरबरशाह के राममन्दिर, रघुनाथमन्दिर तथा कमला नेहरू स्मारक महाविद्यालय में मनाया गया। अनन्तर इस सम्बन्ध में पंच दिवसीय कार्यक्रम २४ जन से २८ जून १९७४ तक टी० टी० कालेज के एक विशाल हाल में सम्पन्न हुआ। प्रथम कार्यक्रम २४ जून को 'निबन्ध प्रतियोगिता' से प्रारम्भ हुआ। इसमें प्रायः श्रीनगर के सब महाविद्यालयों के हिन्दी छात्र व छात्राओं ने भाग लिया। २५ जून मंगलवार को 'तुलसी संगीतसन्ध्या' के अन्तर्गत यहां के महाविद्यालयों तथा संगीत संस्थाओं की छात्राओं ने मानस के विविध छन्दों में गायनप्रतियोगिता द्वारा श्रोताओं को अह्लादित किया। २६ जून बुद्धवार को श्री आर० एच० चिश्ती उपकुलपति, कश्मीर विश्वविद्यालय की अध्यक्षता में मानस सम्बन्धी परिसंवाद हुआ। इसमें डा० अय्यूबखान 'प्रेमी', डा० निजामउद्दीन, प्रो०

पृथ्वीनाथ 'पुष्प', प्रो० काशीनाथ दर, श्री बी० एम० शास्त्री, प्रो० विजय मोहिनी कौल ने निबन्ध पढकर सुनाये। अन्ततः चिश्ती महोदय ने 'मानस' के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा :—

"रामचरित मानस संत तुलसीदास की अनुपम रचना है। यह सम्राट अकबर के शासन काल की है। यह रचना १५७४ ई० में तब लिखी गई जबकि विभिन्न देशों में विभिन्न भाषाओं-फारसी, अंग्रेजी, फ्रेंच आदि की साहित्य सृजना होरही थी। अतः इस लिहाज से वह साहित्यिक सदी थी।

तुलसीदास से पहले महर्षि वाल्मीकि ने संस्कृत में रामायण लिखी थी। परन्तु वह उतनी लोकप्रिय न होसकी, जितनी तुलसी की रामायण। क्योंकि तुलसी ने जनभाषा में इसे लिखा, जिसके कारण यह लोकप्रिय हुई है। अब इसके अनुवाद अंग्रेजी, उर्दू, फ़ारसी, रूसी एवं जर्मन आदि भाषाओं में भी हो चुके हैं। यह दुनिया की आम पसन्द तखलीक (रचना) है।

वाल्मीकि ने रामायण में राम को भगवान का दर्जा दिया है किन्तु तुलसी ने उसको इन्सान का भी दर्जा देकर उसके गुणों व अवगुणों का भी वर्णन किया है। तुलसीदास के समय हिन्दुस्तान में ब्राह्मण धर्म का ह्रास हो चुका था। तुलसी ने भारतीय संस्कृति को रामायण द्वारा पुनर्जीवित कर दिया।"

तीसरे दिन २७ जून बृहस्पतिवार को प्रो० पृथ्वीनाथ 'पुष्प' की अध्यक्षता में हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, कश्मीरी तथा पंजाबी में निदेशालय, क्षत्रीय प्रचार, भारत सरकार के सहयोग से कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें कवियों ने मानस के रचयिता सन्त तुलसीदास को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

२८ जून शुक्रबार को माननीय डा० कर्णसिंह सभापति, रामचरितमानस चतुःशती के सभापतित्व में एक विशाल सम्मेलन हुआ। सर्वप्रथम 'प्रेम संगीत निकेतन' की छात्राओं ने बी० एन० शास्त्री रचित 'तुलसीवन्दना' का गायन किया। इसके बाद संयोजक ने वार्षिक विवरण पढकर सुनाया। तत्पश्चात् डा० कर्णसिंह के कर-कमलों द्वारा निबन्ध प्रतियोगिता तथा संगीत प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कार पाने वाले विद्यार्थियों के नाम इस प्रकार हैं :- एस० पी० कालेज के इन्द्रजीत डुल्लू ने प्रथम पुरस्कार के रूप

में एक सौ रुपया, एस० पी० कालेज के रंजन कुमार को द्वितीय पुरस्कार के रूप में पचत्तर रुपये, गवर्नमेंट कालेज फार विमेन, मौलाना आजाद रोड की कुमारी सिद्दीकी को तृतीय पुरस्कार के रूप में पचास रुपये दिये गये। संगीत प्रतियोगिता में गवर्नमेंट कालेज की कु० शमीम देव को एक सौ रुपया, 'संगीत महाविद्यालय' की कु० कैलाश को पचत्तर रुपये, 'प्रेम संगीत निकेतन' की छात्राओं को तीसरा पुरस्कार पचास रु० दिया गया। पारितोषिक वितरण के बाद डा० कर्णसिंह ने कहा :-

"रामचरितमानस भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। यह इतनी सरल पुस्तक है कि सर्वसाधारण भी इसे पढ़ सकता है और आसानी से समझ सकता है। कई ग्रंथ ऐसे होते हैं जिन्हें विद्वान ही पढ़ सकते हैं, किन्तु रामचरितमानस इस श्रेणी में नहीं आता।

मानस के मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के विषय में तो कुछ कहना बहुत कठिन है। उनका तो व्यक्तित्व इतना विशाल, इतना प्रकाशमय है कि वहां समझ में नहीं आता कि क्या कहें। एक दृष्टि से तो हम उन्हें परब्रह्म स्वरूप मानते हैं। अगर यह दृष्टि रखी जाए तब तो कुछ भी कहना सम्भव नहीं।

"तस्य भासा सर्वमिदम् विभाति
यथा वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।"

उपनिषद का वाक्य है। जहां वाणी और बुद्धि पीछे गिर जाती है, समझ नहीं पाते बोल नहीं पाते। अगर हम श्रीराम के परब्रह्म स्वरूप का रूप देखें तो उनके विषय में तो हम कुछ कह ही नहीं सकते।

लेकिन श्रीराम की विशेषता यह है कि उनका एक दूसरा भी रूप है -- दूसरा पक्ष है -- मानवीय। उस मानवीय पक्ष में हम बहुत कुछ पा सकते हैं। इस रूप में उन्होंने एक प्रकार से एक ऐसी मर्यादा स्थापित की, एक ऐसा पथ प्रदर्शन किया, जिससे आज भी मानव लाभान्वित हो सकता है।

रामचन्द्र जी का जीवन हमारे समान ही संघर्षमय रह चुका है। उन्होंने भी साधारण मनुष्यों की तरह सुख-दुख झेले। यदि हम इस

आणविक युग में भी उनके जीवन तथा आदर्शों का अनुसरण करेंगे तो अवश्य हमारा जीवन सुखी बन सकेगा। तुलसी की रामायण किसी विशेष जाति के लिए ही उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती है बल्कि सारे विश्व के लिए।

रामचरितमानस चतुःशती समारोह का उद्देश्य तब ही सफल हो सकता है, जब हम उससे कुछ शिक्षा लें। चतुःशती के समाप्त होने पर भी श्रीरामचन्द्र का संघर्षमय जीवन लोगों के लिये केवल प्रकाशस्तम्भ ही नहीं वरन् सर्वदा प्रेरणा स्रोत भी बना रहेगा।"

अन्त में उन्होंने समिति के कार्यक्रमों की मुक्त कण्ठ से सराहना की।

प्रस्तुत 'मानस-दर्पण' में मानसचतुश्शती के उपलक्ष्य जम्मू तथा कश्मीर में आयोजित परिसंवाद में पठित समस्त लेखों का संग्रह तथा संपादन किया गया है। गवेषणात्मक दृष्टि से लिखे गये ये लेख केवल मानस के महत्त्व पर ही विशद प्रकाश नहीं डालते, वरन् अनेकों अर्वाचीन विवादास्पद विषयों को सुलझाते हुए सुस्फुट हस्तामलकवत् बना देते हैं। आशा है उपर्युक्त चतुःशती समारोह एवं तदर्थ किया गया समस्त प्रयास सहृदय विद्वद्वृन्द के लिए प्रेरणात्मक सिद्ध होगा।

इन समारोहों को सफल बनाने तथा पुस्तक के प्रकाशन में 'धर्मार्थ विभाग' के सचिव श्री गणेशदास शर्मा ने जो आर्थिक सहायता प्रदान की है, उसके लिए समिति उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती है।

इस पुनीत राष्ट्रीय कार्य में 'कश्मीर प्रादेशिक मानस समिति' के प्रधान श्री मुकुन्दराम शास्त्री, उपप्रधान, आचार्य दीनानाथ शास्त्री तथा अन्य हिन्दी प्रेमियों—विशेषतः श्रीपरमानन्द शास्त्री, एम० ए० तथा सरला कुमारी कल्ला एम० ए० ने जो सहयोग दिया है, उसके लिए उनका भी मैं कृतज्ञ हूं।

विनीत,

बदरीनाथ शास्त्री (कल्ला)

संयोजक,

रामचरितमानस चतुःशती,

राष्ट्रीय समिति, श्रीनगर, कश्मीर।

बदरीनाथ शास्त्री (कल्ला)
संपादक, त्रिभाषाकोश, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
सदस्य, बोर्ड ग्राफ स्टडीज इन ओरियण्टल फैकल्टी, कश्मीर विश्वविद्यालय
सदस्य, कश्मीरी परामर्शदात्री समिति, कश्मीर विश्वविद्यालय
मंत्री, जम्मू व कश्मीर सूर पंचशती राष्ट्रीय समारोह समिति, श्रीनगर
महामन्त्री, जम्मू व कश्मीर नागरीप्रचारिणी सभा, श्रीनगर।

तुलसी के नारीपात्र

—डा० वेदकुमारी

रामचरितमानस में महाकवि तुलसी ने कई नारी पात्रों का चरित्र चित्रण किया है। मुख्यरूप से हम इन्हें दो कोटियों में रख सकते हैं। एक ओर तो राम के विरुद्ध आचरण करने वाले खल स्त्री पात्र हैं जैसे कैकेयी, मन्थरा तथा शूर्पनखा और दूसरी ओर राम के प्रति प्रेम, स्नेह, श्रद्धा, आदि के भाव रखनेवाली स्त्रियां हैं सीता, कौशल्या, सुमित्रा, शबरी, अनसूया, त्रिजटा, मन्दोदरी आदि। इन चित्रों में नारी कहीं पत्नीरूप में अंकित हुई है कहीं माता के रूप में, कहीं कन्या के रूप में। इन रूपों में कहीं उसका आदर्श पातिव्रत्य प्रकट हुआ है तो वात्सल्यरस पूरित मातृहृदय। कहीं वह वीरांगना के रूप में सामने आई है तो कहीं आत्मसमर्पण के भाव से आप्लावित भक्त नारी के रूप में चित्रित की गई है। कहीं वह कामलिप्सा से पूर्ण अनैतिकता की मूर्ति है तो कहीं छल कपट की नीति में निपुण चुगलखोर है।

रामपाता कौशल्या :— राम की माता कौशल्या तो मातृत्व के दिव्यगुणों से युक्त आदर्श नारी है जो धर्म और स्नेह दोनों की प्रतिमूर्ति होती हुई भी वह धर्म को पुत्रस्नेह से ऊंचा मानती है। परिवार को भ्रातृविरोध और विघटन से बचाने के लिए उसने प्राणों से भी प्यारे राम को वन जाने की अनुमति दे दी है और उस में भी मां कैकेयी की आज्ञा को पिता के आदेश से अधिक महत्त्व देते हुए कहा है :—

जौं केवल पितु आयसु ताता, तौ जनि जाहु जानि बडि माता।
जौं पितु मातु कहेउ वन जाना, तौ कानन सत अवध समाना।।

(अयोध्या० का० ५६)

मन पर पत्थर रख कर कर्तव्यपरायणा कौशल्या ने यह निर्णय ले लिया है परन्तु मां के हृदय में जो पुत्रवियोग की अग्नि दहक रही है, उसका भी वर्णन कवि ने किया है :—

माई री मोइ न कोउ समझावै
राम गवन सांचो किधौं सपनो मन परतीति न आवै
लगेई रहत मेरे नैननि आगे राम लषन अरु सीता
तदपि न मिटत दाह या उर को विधि जो भयो विपरीता
दुख न रहै रघुपतिहि विलोकत तनु न रहै बिनु देखे
करत न प्राण पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे
कौशल्या के विरह वचन सुनि रोइ उठीं सब रानी
तुलसीदास रघुबीर विरह की पीर न जाति बखानी ।।

एक मां के हृदय की पीडा का कैसा सच्चा और कारुणिक चित्रण है। इतनी गहरी पीडा से जूझती हुई भी कौशल्या अपना कर्तव्य नहीं भूलती। अपनी मानसिक व्यथा को दबा कर वह पुत्रवियोग में तड़पते महाराज को धीरज बन्धाती है :—

नाथ समुझि मन करिय विचारू
राम वियोग पयोधि अपारू
करनधार तुम्ह अवध जहाजू
चढेउ सकल प्रिय पथिक समाजू
धीरज धरिअ तौ पाइ अपारू
नहिं त बूडिहि सब परिवारु ।।

भरत के ननिहाल से लौटने पर वह उस पर लेशमात्र क्रोध नहीं करती अपितु धीरज धरने को कहती है :—

अजहुं वच्छ बलि धीरज धरहू कुसमउ समुझि सोक परिहरउ ।
(अयोध्या काण्ड १६४. ३.)

भरत अपने को अपराधी सा अनुभव करते हैं तो वह स्पष्ट कहती है—मैं जानती हूँ कि राम तुम्हें प्राणों से प्रिय हैं और तुम राम को प्राणों से प्रिय हो। इसलिए जो लोग रामवनगमन में तुम्हारा मत मानते हैं उन्हें सपने में भी सुगति प्राप्त नहीं होगी। स्नेहाभिभूत होकर वह भरत को गले लगा लेती है। नयनों में प्रेम के आंसू भर आते हैं और स्तनों से वात्सल्यरस बह निकलता है। धन्य है राम जननी कौशल्या और धन्य है उसकी उदारता। परिवार को विरोध से बचाने के लिए और धर्म की रक्षा के लिए पुत्रवियोग का असह्य कष्ट सहती हुई भी वह कर्तव्य को नहीं भूलती। चौदह वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद जब वह घर आए राम

को देखती है तो मिलने को ऐसे दौडती है जैसे गाय बछडे को देख कर।

कौसल्यादि मात सब धाई,
निरखि वच्छ जनु धेनु लवाई ॥

पुत्र के लिए ही नहीं अपनी पुत्रवधू सीता के लिए भी कौशल्या के मन में वैसा ही असीम प्रेम है। सीता को बन जाती हुई देखकर वह फूट पड़ती है :—

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई
रूप रासि पुन सील सुहाई।
नयन पुतरि करि प्रीत बढाई
राखेऊं प्राण जानकिहि लाई ॥

बहू के लिए सास का यह मधुर स्नेह ही आदर्श संयुक्तपरिवार के सुख की आधारशिला बन सकता है।

लक्ष्मणमाता सुमित्रा :— सुमित्रा तो कौशल्या से भी अधिक कर्तव्यपरायणा और विशालहृदया है। राम को तो मातापिता की आज्ञा से बन को जाना ही था पर जब लक्ष्मण अपने भैया की सेवा के लिए साथ जाना चाहते हैं तो डरते डरते मां से आज्ञा मांगते हैं कि कहीं वह मना न कर दे। सुमित्रा अपने कर्तव्य को समझती हुई झट कह देती है :—

तात तुम्हारी मातु वैदेही, पिता रामु सब भांति सनेही।
अवध तहां जहं राम निवासू, तहेई दिवस जहं भानु प्रकासू ॥

सुमित्रा के इन त्याग भरे वचनों ने उसे भारतीय नारी समाज में बड़ा ऊंचा स्थान दिलाया है।

सीता :— सीता को तुलसी ने एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है। वह भारतीय नारी की मर्यादा उसकी गरिमा शोभा और प्रतिष्ठा की साक्षात् मूर्ति है। कन्यारूप में वह राम के प्रति अनुरक्त तो होती है पर मर्यादा का पूरा ध्यान रखती हुई अपनी इच्छाओं का दमन कर वाटिका से राजमहल को लौट आती है :—

धरि बड धीर रामु उर आने
फिरि अपनउ पितु बस जाने ॥

पिता के कठोर प्रण और राम के सुकुमार शरीर को देख कर वह शंकित है कि पता नहीं क्या हो जाए पर आंखों के आंसुओं को पलकों से बाहर नहीं आने देती—लोचन जल रहि लोचन कोना। जनकपुत्री की यह शालीनता भारतीय कन्याओं की विशेषता हैं।

पत्नीरूप में सीता के चरित्र की महिमा पूरे रामचरितमानस में व्याप्त है। राजसी सुखों को ठुकरा कर वन के भयानक कष्टों की परवाह न करती हुई वह पतिसेवा में ही निरत रहना चाहती है :—

जहं लगि नाथ नेह अरु नाते
पिय बिनु तियहि तरणिहुते ताते।
तनु धनु धामु धरणि पुर राजू
पति विहीन सबु सोक समाजू।।

उसकी दृष्टि में जहां पति हैं वहां कंद मूल ही अमृत है, पहाड़ी जंगल ही राजमहल हैं, घासफूस ही सुन्दर कोमल शय्या है।

रावण द्वारा अपहृत कर ली जाने पर भी उसका आत्मबल कहीं पाशविक बल के आगे नहीं झुकता। लाख डराने धमकाने पर भी वह पलभर के लिए विचलित नहीं होती। पति की मधुर स्मृति सम्भाले आंसु भरे नयनों से वह उसी की बाट जोहती रहती है।

अयोध्या में लौटने पर उसका गृहिणी रूप देखते ही बनता है। दास दासियों की कोई कमी नहीं है पर सीता घर का काम अपने हाथों से करती है :—

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी
विपुल सदा सेवाविधि गुनी।
निज कर गृह परिचरजा करई
रामचन्द्र आयसु अनुसरई।। (उत्तर काण्ड २३. २.)

बिना किसी घमण्ड के वह कौसल्यादि सभी सासों की सेवा में जुटी रहती है :—

कौसल्यादि सासु गृह मांहि
सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं। (उत्तरकाण्ड २३. ३)

गृहलक्ष्मी का इस से अधिक सुन्दर चित्र और कहां मिलेगा? देवर लक्ष्मण के साथ तुलसी ने सीता का मातृवत् स्नेह दिखाया है। सीताहरण

प्रसंग में वाल्मीकिरामायण के कुछ अंश सीता और लक्ष्मण के निर्मल पावन चरित्रों पर कुछ मलिनता सी लाते दिखाई देते हैं। कपटी मृग मारीच की नकली आवाज़ सुनकर घबराई सीता लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए जाने को कहती है। लक्ष्मण मना कर देते हैं तो सीता उन पर कई प्रकार के लांछन लगाती है। यहां तक कि उन्हें भरत का गुप्तचर और राम की मृत्यु चाहने वाला भी कह देती है। उस पवित्र आत्मा पर सीता का संदेह और उसकी इतनी कठोर भर्त्सना देवी सीता के चरित्र से मेल खाती नहीं दिखाई पडती। तुलसी ने इस कटु प्रसंग को बहुत छोटा करके सीता के मुख से इतना ही कहलवाया है :—

जाहु वेगि, संकट अति भ्राता।

सीता के भोलेपन पर लक्ष्मण मुसकरा उठे। भला जिस राम के इशारे मात्र से सृष्टि का लय हो जाता है वे स्वप्न में भी संकट में कैसे पड सकते हैं।

वाल्मीकिरामायण के लम्बे वादविवाद के स्थान पर तुलसी ने इतना ही दिया है :—

मरम वचन जब सीता बोला, हरिप्रेरित लछिमन मन डोला।
बन दिसि देव सौंपि सब काहू, चले जहां रावण ससि राहू ॥

उस तनिक से क्रोध और हठ के फलस्वरूप सीताहरण हुआ और सीता को कहना पडा—

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा मो फल पायउं कीन्हेंउ दोसा।

बाकी सभी जगह सीता दया, ममता, त्याग और संयम की प्रतिमा दिखाई पडती हैं। राम स्वयं सीता के लिए कहते हैं :—

हा गुन खानि जानकी सीता, रूप सील व्रत नेम पुनीता।

पार्वती :— पार्वती का एकनिष्ठ प्रेम बालकाण्ड में चित्रित किया गया है जहां मुनिजनों के बहुत समझाने पर वह कहती है—

जनम कोटि लगि रगर हमारी बरउ संभु न तौ रहउं कुंआरी ॥

उनकी निष्ठा और तपस्या को देखकर मुनिजन भीं जयजयकार करने लगते हैं।

शबरी :— रामभक्तिरस में पगी शबरी भक्ति के क्षेत्र में किसी से पीछे नहीं। विनम्रता वश वह तो राम के सम्मुख अपने को नीच से नीच बतलाती है। परन्तु राम उसे नौ प्रकार की भक्ति के बारे में बताते हुए कहते हैं कि जाति-पांति, कुल, धर्म, बढाई, धन, बल, गुण, चतुराई इन सब से युक्त होने पर भी जिस मनुष्य में भक्ति नहीं, वह ऐसे ही हैं जैसे पानी बिन बादल। राम को तो वह जन प्रिय है जिसमें कम से कम एक प्रकार की भक्ति तो हो। राम के ही शब्दों में शबरी की भक्ति अत्यन्त दृढ है।

त्रिजटा :— रावण की लंका में त्रिजटा नामक एक धर्मपरायणा वृद्धा सहानुभूति की मूर्ति है, जो घबराई सीता को धीरज बन्धाती रहती है।

मन्दोदरी :— मन्दोदरी रावण की पत्नी है और रावण को सीधे रास्ते पर लाने का भरसक प्रयत्न करती है जो सफल नहीं हो पाता।

तारा :— तारा भी बालि को उचित सलाह देती है पर जब वह नहीं मानता तो राम के हाथों विनष्ट हो जाता है।

यह सब स्त्रीपात्र तो राम के अनुकूल आचरण करने वाले हैं। रामविरुद्ध आचरण करने वाले दूसरी कोटि के स्त्री खलपात्रों में कैकेयी मन्थरा और शूर्पनखा आती है।

कैकेयी :— दशरथपत्नी कैकेयी का प्रारम्भिकरूप अत्यन्त उज्ज्वल और उदार है। वह राम और भरत को एक ही दृष्टि से ही देखती है। राम के राजतिलक की सूचना से क्षुब्ध हुई मन्थरा को वह कहती है। बडा भाई स्वामी बने और छोटा उसका सेवक यह तो सूर्यवंश की रीति ही है। इसलिए राम के युवराज बनने पर क्षोभ कैसा। कैकेयी को राम प्राणों से भी प्यारे हैं और वह अगले जन्म में राम सीता को ही पुत्र और पुत्रवधू के रूप में पाना चाहती है :—

> जों विधि जनम देई करि छोहू होइ राम सिय पूत पतोहू।
> प्राण ते अधिक राम प्रिय मोरे तिन्ह के तिलक क्षोभ कस तोरे।।

पर मन्थरा के वाग्जाल में फंस कर वह ऐसी बदलती है कि नारी सुलभ कोमलता खोकर चट्टान सी कठोरहृदया हो जाती है। निरपराध राम को जंगल में भेजकर अपने पति को जीवन मृत्यु के संशय में झूलता देखकर भी उसका हृदय नहीं पसीजता।

परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु।।

राम के वनगमन का करुणदृश्य, अयोध्यावासियों का क्रन्दन, वल्कल-वस्त्रों में लिपटी सीता की भोली मूर्ति यह सब उसके हठ को हिला नहीं पाते। परन्तु जब उस पुत्र भरत से भी फटकार मिलती है जिसके लिए उसने अपना सहज रूप छोडकर रौद्ररूप धारण किया था तो वह पश्चाताप की अग्नि में जलने लगती है। चित्रकूट में राम सब से पहले उसीके चरण छूते हैं और वह मन ही मन ग्लानि से गली जाती है:—

गरइ गलानि कुटिल कैकेयी, काहि कहे केहि दूषण देइ।।
(अयोध्याकाण्ड २१३. १.)

अयोध्या में लौटे राम से मिलते भी वह लज्जा का अनुभव करती है:—

रामहिं मिलत कैकेयी हृदय बहुत सकुचानि। (उत्तरकाण्ड ६.)

मन्थरा के चित्रण में तो तुलसीदास की लेखनी ने कमाल कर दिखाया है। वैसे तो उसका कर्तव्य ही अपनी स्वामिनी कैकेयी को यह याद दिलाना था कि उसीके पुत्र भरत को राजगद्दी मिलनी चाहिए क्योंकि इसी शर्त पर उसका विवाह राजा दशरथ से हुआ था, पर जिस कुशलता से वह कैकेयी को उकसा कर उसे क्रूर बना देती है, वह देखने लायक है। राम के राज-तिलक की घोषणा पर वह रोनी सूरत बना कर कैकेयी के पास पहुँचती है। जब कैकयी पूछती है कि महाराज सकुशल तो हैं, राम सकुशल तो हैं, तो वह पहला बाण गिराती है यह कह कर:—

रामहि छाडि कुशल केहि आजू, जेहि जनेस देहि युवराजू।।

जब इसका कोई असर नहीं होता तो कौशल्या के भाग्योदय की बात सुनाकर वह सौतिया डाह जगाती है। राजा के कपटपूर्ण व्यवहार का हवाला देती है, पर जब यह सब युक्तियां कैकेयी को विचलित नहीं करती, तो वह अपने सिर दोष मढती हुई कहती है:—

भलेउ कहत दुःख रउरेहि लागा, कहहिं झूठि फुरि बात बनाई
ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई, हमहुं कहबि अब ठकुर सुहाती
नाहिन मौन रहब दिनु राती, करि कुरूप विधि परबस कीन्हा
कोउ नृप होउ हमहिका हानि, चेरि छांडि अब होब कि रानी।।

यह कपट तीर चल जाता है और कैकेयी मन्थरा को अपनी सच्ची हितैषिणी समझकर उसीके इशारों पर नाचने लगती है।

एक और निर्लज्ज नारी पात्र है शूर्पनखा जो अपने को कुमारी बता कर अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए पहले मीठी मीठी बातों से और फिर भयंकर रूप से राम लक्ष्मण को बाध्य करती है कि उससे वे विवाह करें। राम के मना कर देने पर और लक्ष्मण की ओर संकेत करने पर वह लक्ष्मण की ओर जाती है। स्पष्ट है कि उसके मन में किसी एक के प्रति प्रेम नहीं है। वह केवल वासना से अभिभूत है :—

पुनि फिरि राम निकट सो आई, प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई
लछिमन कहा तोहि सो बरई, जो तृन तोरि लाज परिहरई।।
तब खिसिआनि राम पहिं गई, रूप भयंकर प्रगटत भई।।

इसी प्रकार के खल स्त्री पात्रों के लिए तुलसी ने कहा है :—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होई बिकल सक मनहि न रोकी, जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी।।

(अरण्यकाण्ड १६. ३.)

यह वचन केवल वासनामयी नारी के लिए कहे गये हैं। सच्चरित्र नारी के लिए इस बात की पुष्टि सीता-स्वयंवर के समय तुलसी द्वारा कही एक उक्ति से होती है जिसमें उन्होंने विचलित न होते हुए शंभु शरासन की उपमा सती के मन से दी है जो कामी पुरुष के वचनों से भी विचलित नहीं होता :—

डगइ न संभु सरासन कैसे, कामी वचन सती मन जैसे।

तुलसी पर प्राय: यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने नारी की जी भर कर निन्दा की है। इस प्रसंग में उनके ये पद्य विशेष रूप से उद्धृत किये जाते हैं :—

१. ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, यह सब ताडन के अधिकारी।।

(सुन्दरकांड ५८. ६.)

२. अधम ते अधम अधम अति नारी, तिन मह में मति मंद अधारी।।

३. नारी सुभाउ सत्य कवि कहहिं, अवगुण आठ सदा उर रहहिं।।

(लंकाकाण्ड १५ (ख) १.)

४. महावृष्टि चलि फूटि किआरी, जिमि सुतंत्र भये बिगरहि नारी।।

(किष्किन्धाकाण्ड १४. ४.)

परन्तु इन उक्तियों के प्रसंग का तथा तुलसी के समय की परिस्थितियों का अवलोकन करने पर यह आरोप युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। प्रथम उद्धरण समुद्र का कथन जो तीन दिन तक राम द्वारा प्रार्थना करने पर भी अपना हठ नहीं छोड़ता और जिसके ऊपर क्रुद्ध होकर राम को कहना पड़ता है :—

लछिमन बान सरासन आनू, सोषों वारिधि बिसिख कृसानु।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती, सहज कृपन सन सुन्दर नीती॥

इस शठ कुटिल समुद्र के विचार को तुलसी का मत मान लेना कहां तक उचित है? यदि तुलसी की दृष्टि में शूद्र और नारी केवल ताडना के ही अधिकारी होते तो वे गुह, निषाद तथा शबरी को राम के प्रिय पात्रों में सम्मिलित न करते। उनकी दृष्टि में तो माता का स्थान पिता से भी बढकर ऊंचा है तभी तो वह कौशल्या से कहलवाते हैं :—

जौं केवल पितु आयसु ताता, तौ जनि जाहु जानि बडि माता॥

दूसरी उक्ति भक्ति में मग्न शबरी की है जो अपने को अधम से अधम स्त्रियों में से भी नीच समझती है। यह कथन उसकी विनम्रता और अहंकारहीनता को प्रकट करता है। सामान्य रूपेण नारी की हीनता का बोधक नहीं हैं।

तीसरी उक्ति का वक्ता रामायण का खल नायक रावण है। अतः उसे विशेष महत्त्व देना समुचित नहीं।

चौथी उक्ति में नारी स्वतन्त्रता का विरोध किया गया है जो मनुस्मृति अध्याय ५, श्लोक १४२ के "न भजेतस्त्री स्वतन्त्रताम्" का अनुवाद है। तुलसी के समय की सामाजिक परिस्थितियों को देखने पर कहा जा सकता है कि उस समय नारी उपभोग की वस्तुमात्र समझी जा रही थी। विलासिता के उस दौर में पुरुष को नारी के वासनामय रूप से विमुख करना और नारी को मर्यादित जीवन की ओर प्रेरित करना तुलसी का उद्देश्य था। भक्ति के क्षेत्र में उनके लिए स्त्रीपुरुष सब समान हैं। उच्चकुलोत्पन्ना कैकेयी रामविरोधिनी होने के कारण निन्दनीय है और नीतिनिपुणा धर्मपरायणा मन्दोदरी तथा त्रिजटा जैसी राक्षसियां भी उनके लिए प्रशंसनीय हैं। सीता जैसी सती साध्वी नारी के लिए उन्होंने गहरी श्रद्धा प्रकट की है। वस्तुतः तुलसी भारतीय संस्कृति की रक्षार्थ मर्यादावाद के समर्थक और पोषक थे। उनकी दृष्टि में मर्यादाओं का पालन करने वाली नारी तो परिवार और समाज के लिए कल्याण करने वाली होती है परलक्ष्यच्युत हुई अमर्यादित नारी परिवार और कुल को विनाश की ओर ले जाती है।

भारतीय संस्कृति और रामचरितमानस

डा० संसारचन्द

संस्कृति शब्द हिन्दी में अंग्रेजी के कल्चर शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है रुचियों और भावनाओं का उदात्तीकरण। नर-विज्ञान में संस्कृति का प्रयोग व्यापक अर्थ में मिलता है। इसके अनुसार वे सब बातें जो हम समाज के सदस्य होने के नाते सीखते हैं, संस्कृति कहलाती हैं। इस प्रकार नरविज्ञान में सभ्यता और संस्कृति का एकीकरण किया गया है। सभ्यता का सम्बन्ध मुख्यतः शारीरिक उपलब्धियों से है, जिनके द्वारा मानव जीवन सुखी और उत्तम बनता है। उसमें नियमितता और व्यवस्था आती है। संस्कृति मानव-उत्थान की प्रगति का अग्रिम चरण है। इस अर्थ में संस्कृति मानवीय गुणों का समुदाय समझी जाती है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं। इसे जीवन का दृष्टिकोण कहा जा सकता है। इसमें कृपा, उदारता, प्रेम, सत्य, शिव, सुन्दर आदि शाश्वत गुण सन्निहित होते हैं। मूर्ति, चित्र, संगीत, नृत्य तथा काव्यादि कलाएं इन्हीं गुणों की चरम परिणति का निष्कर्ष हैं। इन्हीं के माध्यम से किसी देश अथवा जाति में राष्ट्रीय विचारों, भावों, आशाओं, आकांक्षाओं आदि का उदय होता है, जो अपनी समग्रता में संस्कृति का रूप ग्रहण करते हैं। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि संस्कृति में चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की सभी क्रियाएं रूपग्रहण करती हैं जो मानव व्यक्तित्व को अर्थ देकर समृद्ध बनाती हैं। इस दृष्टि से विभिन्न शास्त्र तथा दर्शन आदि में उपलब्ध चिन्तन को संस्कृति की संज्ञा दी जा सकती है। मोक्ष साधन तथा पूर्णत्व की खोज भी संस्कृति का अंग मानी जायेगी। संक्षेप में मानव जीवन तथा व्यक्तित्व के वे रूप किसी देश की संस्कृति के अन्तर्गत ग्रहण किये जायेंगे, जिन्हें देश विदेश में महत्वपूर्ण मूल्यों का अधिष्ठान समझा जाता है।

मनुष्य एक ऐतिहासिक प्राणी है। उसे अपनी जीवनयात्रा में अतीत के दाय से प्रेरणा एवं स्फूर्ति मिलती है। निस्संदेह अतीत से अलगा कर वर्तमान का कोई मूल्य नहीं रहता। जिसप्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण

में उसके विगत जीवन के अनुभव एवं उपलब्धियों का योगदान होता है, उसी प्रकार किसी जाति अथवा देश के जीवन में सांस्कृतिक धरोहर का अपना स्थान होता है। यह अलग बात है कि मानव जीवन के अनुभव एवं उपलब्धियों का नैरन्तर्य केवल एक जीवन तक चलता है, जबकि संस्कृति पीढ़ी दर पीढी संक्रमित होकर अपने स्थैर्य एवं अखण्डता की रक्षा करती है।

सांस्कृतिक वैभव की दृष्टि से भारत एक शिरोमणि देश है। इस देश के राजाओं ने स्वेच्छा से सिंहासन छोड़े। प्रजागण भी घरबार छोड़, वानप्रस्थी होते रहे। यह तपस्या और आध्यात्मिकता का देश है। विश्व साहित्य का आदिम ग्रन्थ ऋग्वेद यहीं पर हिमालय की गोद में लिखा गया। गंगा का उच्छल वारिप्रवाह भारतीय गौरव का साक्षी है। स्वर्गीय पण्डित नेहरू के शब्दों में "गंगा की कहानी भारत की संस्कृति की कहानी है। यह जीवन की समृद्धि और परिपूर्णता तथा निवृत्ति और त्याग एवं जन्म और मरण की कहानी है।"

भारतीय संस्कृति एक जीवन्त और विकासशील संस्कृति है। भारत के लम्बे इतिहास में इस पर अनेक प्रभाव पड़ते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप इसका स्वरूप न्यूनाधिक परिवर्तित होता रहा है। भारतवर्ष अनेक जातियों, धर्मों तथा संस्कृतियों का संगमस्थल बनता रहा है। इस देश में अनेक धर्म-प्रवर्तकों ने जन्म लिया। यहां दो धर्म विशेषरूप से पनपे और फैले हैं एक तो वेदों और उपनिषदों पर आधारित वैदिक धर्म दूसरा वेद-विरोधी बौद्धधर्म। बाद में ईसाई धर्म और इस्लाम भी यहां की भूमि में प्रविष्ट हुए। यहां यूनानी, कुशन, शक, हूण, पठान, मुगल, पुर्तगाली, फ़ांसीसी और अंग्रेज़ जातियों ने भी पदार्पण किया और बसने का प्रयत्न किया। इनमें से कुछ जातियां सचमुच यहां बस कर जनता में घुलमिल गईं। इसके विपरीत, अंग्रेज आदि कुछ जातियां अपनी पृथक सत्ता बनाकर रहीं परन्तु वे भी हमारी संस्कृति पर अपने प्रभावचिह्न छोड़ गईं। वैदिकसंस्कृति इस देश की सब से व्यापक एवं समृद्ध संस्कृति है जिसे उपर्युक्त सभी जातियों तथा उनके धर्मों से सम्बन्धित अनेक सांस्कृतिक उपधाराओं ने पुष्ट और सम्पन्न किया है। भारतवर्ष में जन्म लेकर लंका, तिब्बत, चीन, जापान आदि देशों तक फैल जाने के कारण बौद्धधर्म यद्यपि वैदिक हिन्दूधर्म की अपेक्षा विशेष प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण बन गया किन्तु उसकी सभी प्रधान विशेषताएं हिन्दूधर्म में समाहित हो गईं। बौद्धों के अहिंसावाद को जिस सीमा तक भारत-

वर्ष में वैष्णवों ने अपनाया उस सीमा तक लंका, तिब्बत, चीन या जापान के बौद्ध नहीं अपना सके। इन देशों के बौद्ध तो आमिषभोजी बने रहे। वास्तव में मांसाहार का परित्याग भारतीय बौद्धों, जैनियों तथा कुछ अन्य हिन्दू संप्रदायों की निजी विशेषता है। बौद्धों ने जिन कर्मकाण्डों तथा हिंसात्मक यज्ञों का विरोध किया, उसका विरोध तो उपनिषदों में ही प्रारंभ हो गया था। बौद्धों के निर्वाण और हिन्दुओं की मुक्ति में विशेष अन्तर नहीं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हमारे देश में मुक्ति-साधन के लिए इह लोक तथा परलोक के भोगैश्वर्य के प्रति अनासक्ति को नितान्त आवश्यक समझा गया। विभिन्न धर्म-प्रवर्तकों की शिक्षाओं का यह सामान्य अंश है।

कालान्तर में जहां बौद्धधर्म इस देश से लुप्तप्राय हो गया वहां इस्लाम के आने से पूर्व दूसरा कोई धर्म हिन्दूधर्म के प्रतिद्वंदों के रूप में इस देश में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करसका। बौद्ध तथा जैनधर्म ने जहां संसार त्याग के सम्बन्ध में नूतन चिन्तन दिया, वहां गृहस्थ जीवन के लिए किसी नई क्रान्तिकारी व्यवस्था का निर्माण नहीं किया। अपनी अपनी धरती से दूर होने के कारण इस्लाम तथा ईसाई धर्म भी सांस्कृतिक दृष्टि से कोई व्यापक निर्माण-कार्य नहीं कर सके। इस्लाम ने हमारी कला और साहित्य को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया किन्तु दर्शन-क्षेत्र में उसकी कोई विशेष उपलब्धि दिखाई नहीं दी। इस दृष्टि से ईसाइयों का प्रभाव तो यहां और भी कम रहा। योरुप से जो सांस्कृतिक चेतना प्रविष्ट हुई वह भारतीय चेतना और संस्कृति का अंग बनकर ही विलीन हो गई। इस प्रकार भारत में जन्मी या पनपी विभिन्न संस्कृतियों से प्रभावित वैदिक संस्कृति का जो विकासशील रूप सामने आया उसी को हम भारतीय संस्कृति की सज्ञा देते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति पर दृष्टिपात करने से उसकी कुछ मौलिक विशेषताएं सामने आती हैं, जो इसे अन्य देशों की संस्कृतियों से अलगाती हैं। इस संस्कृति की मुख्य विशेषता इसकी विश्व-बन्धुत्व की भावना है। प्रारम्भ से लेकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" इसका उद्घोष रहा है। इसीलिए भारतीय संस्कृति समन्वय-भावना से ओतप्रोत है। यहां धार्मिक पूजा उपासना के अनेक रूप साथ-साथ चलते रहे हैं। स्वयं हिन्दू-धर्म के अन्तर्गत ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग आदि अनेक मार्ग स्वीकृत किये गये हैं। इन विविध भागों के प्रति सहिष्णुता एवं समन्वय-भावना भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है।

यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि भारतीय संस्कृति का अध्ययन रामचरितमानस के आधार पर करना कहां तक समीचीन है। पाश्चात्य विद्वानों ने तो भारतीय संस्कृति के मर्म को खोजने के लिए यहां के दार्शनिक साहित्य का आश्रय लिया है। यह भी सत्य है कि हमारे देश में दार्शनिक जिज्ञासा और चिन्तन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। फिर भी हमारा विश्वास है कि भारतीय धर्म और दर्शन प्रत्यक्ष रूप से यहां की संस्कृति का पर्याप्त प्रतिफलन नहीं करते। भारतीय धर्म तथा दर्शन का अध्येता यह तो जान सकता है कि मोक्ष या निर्वाण-पथ के पथिक की संवेदना एवं जीवन कैसा होता है किन्तु वह देश के निनानवें प्रतिशत लोगों के सम्बन्ध में प्रमाणिक जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता। उसके लिए यहां के जीवन की विविधता और उसके मूल्यों का ज्ञान कदाचित संभव नहीं होता। इसलिए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि किसी देश की संस्कृति को समझने के लिए केवलमात्र उसके दर्शन तथा धर्मग्रन्थों को जानना ही पर्याप्त नहीं। किसी देश अथवा जाति की संस्कृति को समझने का सबसे महत्वपूर्ण आधार वहां का काव्य साहित्य होता है। जहां तक रामचरितमानस का सम्बन्ध है, इसमें 'एक पंथ दो काज' की उक्ति चरितार्थ होती है। यह केवल मूर्धन्य काव्यग्रंथ ही नहीं प्रत्युत एक उच्चकोटि का धर्मग्रन्थ भी है। अतः ऐसे धर्मप्राण काव्यग्रंथ को छोड़कर भला और कौन सा ग्रंथ भारतीय संस्कृति का सच्चा निदर्शन सिद्ध हो सकता है।

इस दृष्टि से रामचरितमानस एक उत्कृष्ट सांस्कृतिक महाकाव्य है। एक श्रेष्ठ सांस्कृतिक महाकाव्य के अधिकांश लक्षण इस पर पूरी तरह घटित होते हैं। सर्वप्रथम एक सांस्कृतिक महाकाव्य का मूलस्वर सार्वभौम होता है। उसमें मानव-जीवन की उस संभावनाओं एवं मूल्यों का उद्घाटन होता है, जो व्यापक एवं सर्वग्राह्य होते हैं। इससे मानवजीवन विपुल, विस्तृत एवं समृद्ध बनता है। जिन काव्यों की जीवन संभावनायें किसी निश्चित जाति, वर्ग एवं काल-विशेष तक फलीभूत होकर निष्क्रिय हो जाती हैं, वे काव्य सांस्कृतिक निकष पर खरे नहीं उतरते। एक सांस्कृतिक आख्याता कवि के लिए किसी वर्ग, सम्प्रदाय आदि से प्रतिबद्ध होकर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना संभव नहीं होता। यदि उसका कविकर्म एक सामुदायिक योजना की परिणति के रूप में स्वीकृत नहीं होता तो वह सांस्कृतिक काव्य के महामहनीय आसन पर अभिषिक्त नहीं हो सकता।

मुझे यह कहते हुए परम हर्ष हो रहा है कि इस दृष्टि से तुलसी का महाकाव्य विश्लेषण की तीव्र से तीव्र आंच सह सकता है। स्मरण रहे कि विभिन्न देशों एवं जातियों की नैतिक धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यतायें विभिन्न होती हैं, जो एक विशिष्ट सांस्कृतिक जीवन-दृष्टि को जन्म देती हैं परन्तु जहां तक मानस का सम्बन्ध है वह एकदेशीय न होकर सार्वदेशीय है। इसमें जिस चारित्रिक साधुता, उदार सहृदयता एवं श्लाघ्य मानवता का आदर्श मिलता है, वह सभी देशों अथवा जातियों के लिए ग्राह्य है। तुलसी का मानस देशकाल की सीमित कारा में आबद्ध नहीं हो सकता।

इसीलिए डा० ग्रियर्सन ने तुलसीदास को भगवान बुद्ध के बाद दूसरा लोकनायक माना है। उनका कथन है कि भारतवर्ष के इतिहास में तुलसीदास के महत्व के सम्बन्ध में 'इदमित्थम्' नहीं कहा जा सकता। उनकी रामायण के गुणों को साहित्यिक दृष्टि से एक ओर रखकर यह बात उल्लेख्य है कि यह ग्रन्थ यहां की समस्त जातियों ने अपनाया है[1]। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ उस भारतीय संस्कृति का उदात्त प्रेरणा स्रोत है, जो वस्तुतः एक सार्वभौम वैश्विक संस्कृति की संभावनाओं की पूर्ति करती है।

तुलसी के काव्य में संस्कृति का जो रूप उभरा है वह नितान्त मौलिक अनन्य एव असाधारण है। यह उस संस्कृति से पर्याप्त अंशों में भिन्न ठहरती है, जो व्यास वाल्मीकि तथा कालिदास के काव्यों में सुरक्षित है। इन महान कवियों की सांस्कृतिक चेतना व्यापक होते हुए भी सर्वांगीण नहीं कही जा सकती। व्यास में भारतीय संस्कृति की धर्मपरायणता पर बल है तो वाल्मीकि में चरित्रमूलकता का स्वर मुखर होता है। कालिदास में जीवन और जगत की सौन्दर्यैषणा का अखंड प्रसार है, जबकि तुलसी ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने परम्परागत सांस्कृतिक दाय को अपने कविकर्म में इस समग्रता के साथ रूपायित किया है कि तुलसी-काव्य और भारतीय संस्कृति परस्पर पर्याय हो गये हैं। वास्तव में तुलसी-संस्कृति मुख्यतः एक आध्यात्मिक संस्कृति है। वैदेशिक संस्कृतियां मूलतः भौतिक हैं और उनमें

---

1. The importance of Tulsi Das in the History of India cannot be underrated. Putting the literary merits of his Ramayana out of question, the facts of its universal acceptance by all clases is surely worthy of note.

मनुष्य को प्राकृतिक परिवेश के एक अंगमात्र तक सीमित किया गया है। मानस में मानवमात्र की मूलभूत आध्यात्मिकता मूर्तिमती होकर सामने आई है। यह मानव तुलसी के काव्यात्मक संस्पर्श से देशकाल आदि के बन्धनों से विनिर्मुक्त होकर विश्व मानव के रूप में निर्मित हुआ है। वैदेशिक संस्कृति के अनुसार मानव जीवन की परिधि देह बुद्धि तक ही समाप्त हो जाती है। इसे विराट जगत तक व्यापक रूप में देखने की क्षमता इस संस्कृति की सबसे बड़ी सीमा है। इसके विपरीत भारतीय सांस्कृतिक अभियान ने न केवल इसके संकीर्ण अभावों पर विजय प्राप्त की है बल्कि इसे वह उत्तुंग गरिमा प्रदान की है जो विश्व के इतिहास में सर्वथा अनुपमेय है।

वस्तुतः मानस-संस्कृति हजारों वर्षों से चली आ रही भारतीय संस्कृति की सुसम्पन्न परिणति है। इस संस्कृति का अतीत प्रागैतिहासिकता की कुहेलिका में छिपा है। इसका अविर्भाव सर्वप्रथम हम सिन्धुघाटी के अवशेषों में देखते हैं। यहां से अपनी लम्बी यात्रा प्रारंभ कर वेद, पुराण, बौद्ध, सन्त आदि संस्कृतियों को समेटती हुई अनेक क्रान्तियों एवं संक्रान्तियों को आत्मसात् करती हुई, यह अन्ततः तुलसी तक पहुँचती है। इस प्रकार तुलसी में हम विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों का अपूर्व समन्वय देखते हैं। हमारे सांस्कृतिक उत्थान की यह एक चरम उपलब्धि है जबकि वैदिक, अवैदिक, ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी, आर्ष, अनार्ष आदि सभी प्रकार की चिन्तन-पद्धतियां नानाविध संस्कृतियों के सामंजस्य से एक विश्वसंस्कृति की क्षमता एवं औदार्य लेकर सामने आती हैं।

तुलसी संस्कृति से यह अभिप्राय कदापि नहीं कि यह संस्कृति तुलसी की एकान्त आविष्कृति है। इसकी सारभूत सामग्री परम्परागत है, प्राचीन है परन्तु इसकी विशेषता यह है कि यह तुलसी का अनुभूत सत्य बनकर सामने आयी है। तुलसी ने स्वयं भी इस सांस्कृतिक दाय को साभार स्वीकृत किया है। जब वे "नाना पुराण निगमागम सम्मत" कहते हैं तो उनका उद्देश्य इसकी विविधता और व्यापकता व्यजित करना है। वास्तव में इसकी निधि सब धर्मों की सारभूत पूँजी है। इसमें भारतीय चेतना का ही प्रसार नहीं मिलता, प्रत्युत मानवमात्र का अजस्र चिन्तन अपनी पूर्ण समग्रता एवं नरन्तर्य में प्रस्फुटित होता है। इसमें मानव समस्याओं के समाधान वैश्विक स्तर पर हुए हैं। तुलसी के राम भी इसी सार्वभौम सत्य के प्रतीक हैं। औपनिषदिक भाषा में वह 'सत्यस्य सत्यम्' 'एकं अद्वितीयम्' हैं। वह परम

सूक्ष्म, चिन्मय, सच्चिदानंद और ब्रह्म रूप हैं। अखिल ब्रह्मांड में अनेक सर्ग स्थिति और प्रलय के बीच एकमात्र अपरिवर्तनीय सत्य हैं। तुलसी ने अपने राम को इसी रूप में परिभाषित किया है :—

राम सच्चिदानंद दिनेसा नहिं तहं मोह निसा लव लेसा।
सहज प्रकास रूप भगवाना नहिं तहं पुनि विग्यान विहाना।।
हरष विषाद ग्यान अग्याना जीवधर्म अहमिति अभिमाना।
राम ब्रह्म व्यापक जगजाना परमानंद परेस पुराना।।
भक्त कल्पपादप आरामः तर्जन क्रोध लोभ मद कामः।
अति नागर भव सागर सेतुः त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः।।
अतुलित भुजप्रतापबलधामः कलिमल विपुल विभंजन नामः।
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः संतत शं तनोतु मम रामः।।

भारतीय संस्कृति के लिए यह शुभ घटना थी कि उसके महाकवि ने सर्वप्रथम संस्कृत का मोह त्याग कर जनभाषा हिन्दी अथवा अवधी में रामचरितमानस की रचना की। भारतीय संस्कृति के आख्यान के कारण ही संभवतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी को हिन्दी का सबसे बड़ा कवि माना है। वैसे यह महाकाव्य केवल हिन्दी का ही नहीं, समस्त उत्तर भारत का प्रतिनिधि सांस्कृतिक ग्रंथ कहा जा सकता है। रामचरितमानस में तत्कालीन भारतीय समाज की सबलतायें एवं दुर्बलतायें प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। वास्तव में तुलसी के जनभाषा को अपनाने का अभिप्राय था, उनका जनता की अनुभूति के निकट आना। तुलसी की अनुभूति और संवेदना केवल राजाओं अथवा शिष्टों की संवेदना नहीं है। उनकी वाणी में जनहृदय का आवेग और संगीत मिलता है। भक्तिमार्ग वैसे भी जनता के लिए होता है जबकि ज्ञानमार्ग कतिपय बुद्धिजीवियों के लिए ग्राह्य होता है। तुलसीदास का प्रथम अभिमत भक्ति का ही था इसीलिए उन्होंने जनभाषा को अपने काव्य का माध्यम चुना।

तुलसी भारत के सभी कवियों में सब से अधिक धर्मदृष्टि सम्पन्न कवि हैं। संभवतः वे हमारे देश के पहले महाकवि हैं जो मूलरूप में एक सन्त और महात्मा हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक डा० देवराज के शब्दों में 'तुलसी के मानस का देश के हृदय पर जो प्रभाव पड़ा उसका एक महत्वपूर्ण कारण था--उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में सन्त एवं कवि का सम्मिलन। तुलसी में सन्त का व्यक्तित्व इतना प्रधान है कि उनके काव्य में शृंगार

रस बहुत कुछ परिष्कृत ही नहीं हुआ है बल्कि वहां से बहिष्कृत सा हो गया है'। यही कारण है कि मानस में सर्वत्र सात्विक आवेगों का ही निरूपण है। इसमें आपको कहीं भी ऐसी सामग्री नहीं मिलेगी जो आपके मन में विशुद्ध शृंगार भावना जागरित कर सके। राम का सौन्दर्य स्नेह, श्रद्धा, वात्सल्य का उद्रेक तो करता है परन्तु वह कहीं भी दृष्टि को वासना से उष्ण नहीं बनाता। सीता का भी भोली बालिका तथा जगज्जननी का रूप तो मिलता है परन्तु उसके तारुण्य-चित्रण में तो कवि प्रायः संयत हो रहा है। इस प्रकार के सौन्दर्य चित्र महदंश तक ठण्डे एवं निर्विकार हैं, जिससे काव्य में विशेष धार्मिक विशुद्धता एवं निर्मलता आ गई है।

रामचरितमानस के नायक राम विष्णु के अवतार होते हुए भी एक आदर्श महापुरुष हैं, जिनका चरित्र अनुकरणीय है। वे सच्चे अर्थों में एक महात्मा-महान् आत्मा हैं। जो स्वप्न में भी किसी का अहित नहीं सोच सकते। जिनकी दृष्टि में परहित सम्पादन के समान कोई पुण्य नहीं, पर-पीड़न के समान कोई पातक नहीं जैसा कि मानस के इस महामंत्र से स्पष्ट है :—

परहित सरिस धरम नहिं भाई. परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

वस्तुतः राम के रूप में तुलसी ने एक ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना की है जिसमें सहृदयता, करुणा, मित्रता, उदारता, त्याग आदि अशेष नैतिक गुण सम्पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। मानस में दो प्रकार के आदर्श चरित्र हैं—एक ओर राम हैं और दूसरी ओर उनके भक्त, जिनमें भरत प्रमुख हैं। मानस में कवि का प्रधान लक्ष्य राम के गुणगान तथा भक्तों के महत्व स्थापन द्वारा भगवद् भक्ति का प्रचार है। इसीलिए मानस में सन्त-समागम और हरिकथा का विशेष महत्व है। किन्तु राम का आदर्श सर्वसाधारण के लिए अनुकरणीय एवं ग्राह्य नहीं है। जहां तक राम के अलौकिक गुणों का सम्बन्ध है वह साधारण मनुष्य की सामर्थ्य से दूर हैं। ऐसी स्थिति में भरत जैसे भक्तों का चरित्र ही मानव गतिगम्य है। मानस के अनुसार भक्त को तो केवल भगवान की भक्ति के लिए ही जीवित रहना है। वह तो केवल किसी भूमिका-विशेष के निर्वाह मात्र के लिए ही संसार

---

१ भारतीय संस्कृति : डा० देवराज पृ० २०२

रूपी रंगमंच पर अवतरित हुआ है। इसके अतिरिक्त उसका कोई अस्तित्व नहीं। संजीवनी औषधि लेकर लौटते हुए हनुमान जब भरत द्वारा अयोध्या में रोक लिए जाते हैं तो वहां उनसे यह जानकर कि लक्ष्मण मरण-शय्या पर है सुमित्रा को हर्ष और शोक दोनों का एक साथ अनुभव होता है। हर्ष का कारण केवल मात्र इतना ही है कि भक्त राम के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करके स्वर्ग सिधार रहा है। मानस में जनसाधारण के लिए सर्वत्र यही उपदेश है कि उन्हें भगवद्भक्ति के लिए ही जीवित रहना चाहिए।

कहा जाता है कि आज मानस के नैतिक एवं सांस्कृतिक आदर्श प्रायः प्रभावहीन हो गये हैं क्योंकि इस देश की धार्मिक तथा दार्शनिक मान्यतायें शिथिल पड़ गई हैं। हमारे विचार में मानस के सम्बन्ध में इस प्रकार की आशंका नितान्त निर्मूल है। मानस के सांस्कृतिक आदर्श एक ऐसी जीवन्त एवं शाश्वत गरिमा से मण्डित हैं कि युग-संक्रमण की विभीषिकाएं इन्हें कलुषित नहीं कर सकतीं। इनके आकर्षण की जड़ें इतनी गहरी हैं कि प्रबल से प्रबल झंझाबात इन्हें विकम्पित नहीं कर सकते। सीता तथा लक्ष्मण का राम के साथ वन गमन, राम तथा भरत की राज्य विषयक निस्पृहता, हनुमान की निःस्वार्थ स्वामिभक्ति आदि ऐसे भव्य आदर्श मिलते हैं, जिनका महत्व आज के भौतिक युग में भी अक्षुण्ण है। सत्य और न्याय के लिए त्याग एवं बलिदान की प्रवृत्ति मानवमूल्यों के बदलते हुए युगों में भी अपने गौरव का निर्वाह करती है। किसी भी युग के मानव-जीवन के उन्नयन एवं परिष्कार के लिए हम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। हमारा दृढ़ विश्वास है कि मानस के राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि चरित्र मानवमनोवृत्तियों को युग-युग तक संस्कृत, उदात्त एवं अनुकरणीय बनाते रहेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

तुलसी पर वर्ण-व्यवस्था के प्रबल पोषक होने का आक्षेप भी यदाकदा सामने आता है। इसमें सन्देह नहीं कि वर्ण व्यवस्था भारतीय संस्कृति का एक दुर्बल पक्ष है। हमारे देश को इसके अनेक दुष्परिणाम सहन करने पड़े हैं। वैदिक काल में संभवतः इस प्रकार की किसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की जा सकती हो परन्तु वेदोत्तर काल में तो इसने देश को अवनति के गर्त की ओर धकेला है। तुलसी के युग में भी वर्ण-व्यवस्था का पर्याप्त ज़ोर था। तुलसी स्वयं इसके प्रति आग्रहशील दिखाई देते हैं :—

वर्ण धर्म नहिं आश्रमचारि श्रुति विरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ।।

किन्तु रामचरितमानस में वर्ण-व्यवस्था के प्रति विरोध के स्वर भी उभरे हैं। मानस के निषाद तथा शबरी के उपाख्यानों द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि भगवद्भक्त छोटी जाति का होते हुए भी अभिनन्दनीय होता है और उसके साथ खानपान में भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। तुलसी की दृष्टि में भगवद्भक्ति एक ऐसी मिलन भूमि है, जहां सब प्रकार के लौकिक भेदभाव लुप्त हो जाते हैं। वास्तव में तुलसीदास परम्परा निर्वाह के लिए ही वर्ण-व्यवस्था का कुछ समर्थन करते जान पड़ते हैं। किन्तु उनकी आंतरिक मनोवृति इससे तालमेल स्थापित नहीं कर पाती। संभवत: इसका कारण उस समय की यह बलवती धारणा थी कि जातिपाति के भेदभाव निस्सार हैं और मनुष्य केवल आंतरिक शुद्धि से हो ऊपर उठता है।

तुलसी के प्रति एक और प्रवाद भी चलता है कि वे वैराग्य के कवि हैं उनका काव्य जीवन के प्रतिषेध का काव्य है। इसका अध्ययन मनुष्य को संसार से निष्क्रिय बनाता है। इसमें जीवन और जगत के प्रति पलायन-वृत्ति का संचार होता है। वास्तव में तुलसी-साहित्य के प्रति इस प्रकार की धारणा कतिपय आलोचकों के एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है। इसका अभिप्राय है कि हम तुलसी को भौतिक धरातल पर विश्लेषित करते हैं। इस प्रकार हम जीवन के आंतरिक पक्ष की घोर अवहेलना करते हैं। तुलसी का भौतिकता के प्रति निषेध या विराग उसकी आत्मिक सम्पन्नता का प्रमाण है। वे तो केवल अपने राम के प्रति ही सराग हैं। उनको बहिर्जगत के प्रति विराग की भावना प्रकारान्तर के राम के प्रति प्रगाढ़ अनुराग की भावना है। उनके लिए प्रकृति केवल राम के नाते ही सुरम्य है। अन्यथा उसमें कोई आकर्षण नहीं। भगवान के सम्पर्क में आते ही समूची प्रकृति शाश्वत सौन्दर्य की एक दिव्य आभा से आलोकित हो उठती है। तुलसी ने वैराग्य को रामभक्ति के साधन रूप में लिया है साध्य रूप में नही। इसी प्रकार ज्ञान की महत्ता भी तुलसी ने भक्ति के लिए ही घोषित की है और ज्ञान तथा वैराग्य को भक्ति के साथ समन्वित किया है :—

"कहहिं भगति भगवन्त कै संजुत ज्ञान विराग"

इस सम्बन्ध में एक और तथ्य भी सामने आता है कि तुलसी-युग में नाथपंथियों के शुष्क वैराग्य का प्रचार खूब फैला हुआ था।

"यह संसार कागद की पुड़िया बंद परे गल जाना है।"

का राग सुनकर संसार पर से विश्वास उठने लगता था। ऐसी परिस्थिति में तुलसी ने वैराग्य को भी मर्यादित रूप देकर उसका परिष्कार किया है। यदि तुलसी के वैराग्य का अर्थ जीवन के प्रति एकान्त अनास्था होती तो वे कदापि मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए तथा पृथ्वी पर ही स्वर्ग को अवतारणा करने के लिए एक सुदृढ़ संकल्प लेकर सामने न आते। तुलसी ने मानव-जीवन में कर्मण्यता का शंखनाद फूंकने के लिए निम्नलिखित शब्दों में अपनी वाणी का प्रसार किया है:—

नरतन सम नहि कवनिऊ देही जीव चराचर जाचत के जेही।
नरकस्वर्ग अपवर्ग नसेनी ज्ञान विराग भगति सुभ देनी॥

इस से बढ़कर ऐहिक अभ्युदय एवं पारलौकिक निःश्रेयस का संदेश भला और क्या हो सकता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "उनकी वाणी की प्रेरणा से आज भी भारतीय जनता सौन्दर्य पर मुग्ध होती है। महत्व पर श्रद्धा रखती है। शील की ओर प्रवृत होती है। सन्मार्ग पर पैर रखती है। विपत्ति में धैर्य धारण करती है। कठिन से कठिन कर्म में उत्साहित होती है। व्यथा से आर्द्र होती है। बुराई पर ग्लानि करती है। शिष्टता का आलम्बन लेती है और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करती हैं।"

उपर्युक्त कथन से तुलसी के वैराग्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। तुलसी-वैराग्य संसार से विरक्त नहीं करता बल्कि मनुष्य को बड़ी से बड़ी चुनौती को स्वीकार करने की तत्परता देता है।

अन्त में अब्दुर्रहीम खानखाना के शब्दों में भारतीय संस्कृति के विश्व-घोष रामचरितमानस को श्रद्धांजलि देते हुए मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

रामचरितमानस विपुल संतन जीवन प्रान।
हिन्दुवान को वेद सम जमनहिं प्रकट कुरान॥

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

श्रीश्यामलाल शर्मा

महाकवि तुलसीदास एक ऐसे कालखंड में उत्पन्न हुए जिसमें जन-मानस दिग्भ्रान्त और विमूढ था। अस्तित्व के संकट की उस बेला में जनता कोई पुष्ट आधार चाहती थी। नाथपंथ और सिद्धों की परंपरा में उसे चमत्कार और कौतूहल तो मिला, पर सहज विश्वास योग्य कुछ नहीं। इस सहज विश्वास को आधार दिया तुलसीदास जी ने एक आदर्श सामने स्थापित करते हुए जिसमें जीवन के सब प्रकार के संघर्षों, परिस्थितियों और भावनाओं के द्वन्द में सर्वोत्तम एवं मर्यादापूर्ण व्यवहार की कसौटी ही मानो उन्होंने दी राम के रूप में। शक्ति, शील और सौन्दर्य समाजतंत्र में यही लोकाकर्षण के तीन केन्द्र होते हैं। तुलसी ने राम के चरित्र में, इन तीनों का सानुपातिक, विकास और प्रतिष्ठापन किया। सामाजिक, पारिवारिक एवं धार्मिक आदर्शों का आधार है—सत्य, शिव, सुन्दर और राम के रूप में इन्हीं तीन तत्वों का विकास तुलसीदास जी ने किया। राम हमारे सामने चिरंतन आदर्श बनकर आते हैं। धीर, गंभीर और कोमल राम अपनी शक्ति के प्रति पूर्ण जागरूक और आश्वस्त हैं। लोकमर्यादा, लोक-रंजन और लोक-रक्षण के लिये निरंतर सन्नद्ध।

राम लोकमर्यादा के संरक्षक थे, भारतीय संस्कृति की सामाजिक विशिष्टताओं के सर्वोत्तम प्रतीक भोग नहीं त्याग, अधिकार नहीं कर्तव्य का संदेश उनके जीवन से मिलता है। राम हमारी संस्कृति की त्यागपूर्ण कर्तव्य भावना के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक हैं। उनका जीवन उनके अपने लिये नहीं, कर्तव्य के लिये अर्पित जीवन है। व्यक्तिगत सुख पर लोकहित की प्रधानता का जीवन है। सत्य की रक्षा के लिये वे चौदह साल वनवास काट कर लौटे तो यह मालूम करते हो कि सीता की पवित्रता के प्रति प्रजा के मन में शंका है, उन्होंने गर्भवती सीता का परित्याग कर दिया। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में इस प्रसंग को नहीं लिया। पर यह राम के चरित्र का एक महत्वपूर्ण अंग है। "उत्तरायण" महाकाव्य की भूमिका में डा० रामकुमार

वर्मा ने सीता-निर्वासन को प्रक्षिप्त अंश माना है और बड़े पुष्ट प्रमाण दिये हैं। मगर फिर भी इस त्याग से राम लोकरंजन की दिशा में कितने आगे चले गये, लोगों के सामने लोकनायक किसप्रकार, संशयातीत होना चाहिये, इस प्रकार का उदाहरण उन्होंने रखा। पर सीता के प्रति उनकी श्रद्धा और एक पत्नीव्रत का सर्वोत्तम उदाहरण अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर मिलता है, जब राम ने सीता की सुवर्णमूर्ति बनवा कर उसे अर्धांगिनी के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। अग्निपरीक्षा के बाद राम का मन सीता त्याग को नहीं मानता था पर राजा होने के नाते चरित्र को संशयातीत रहना ही चाहिये, इस प्रकार का राजमर्यादा का आग्रह देख उन्होंने सीता को तो छोड़ा, पर उसके बाद में मन, वचन, कर्म से सीता के ही होकर रहे। कर्तव्य उनके लिये प्रमुख था। संसार की कोई भी विपत्ति कर्तव्य पालन से राम को विमुख नहीं कर सकती थी। माता के आंसू पिता का प्राण त्याग उनकी कर्तव्य निष्ठा के प्रमाण हैं और प्राणप्रिया पत्नी का त्याग, कर्तव्य भावना का स्मारक। राज्य प्राप्ति से प्रसन्न नहीं, वनवास से दुःखी नहीं, गीता में स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में आता है "सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ" वही बात हम राम में देखते हैं। राज्य मिलते मिलते जब वनवास मिलता है तो उसी भाव से वल्कल पहन कर बन के लिये तैयार हो जाते हैं। कहीं भी मन में एक क्षण के लिये दुःख या खिन्नता नहीं :—

"प्रसन्नतां यो न गतोऽभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्रीरघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा।।

राज्य भी कर्तव्य पालन के लिये तो वनवास भी कर्तव्यपूर्ति के लिये। आदर्श पुत्र, भाई और पति होने पर भी उनका प्रेम कहीं बाधक नहीं बनता, साधक ही बनता है। प्रेम मुक्ति दाता है, मोहक नहीं। मूर्छाकारक नहीं। 'कर्तव्य विस्मरण होते ही सामाजिक पराभव होता है।' राम इस सिद्धान्त के प्रति पूर्ण जागरूक हैं। उनके पारिवारिक जीवन में इस कर्तव्यनिष्ठ दृढ़ता के दर्शन होते हैं। सिंहासन मिलते मिलते वनवास मिला तो निर्लेप होकर उसे स्वीकार किया। इस त्याग में कहीं आवेग नहीं आवेश नहीं। आवेगहीन, शान्त और मर्यादापूर्ण राम चित्रकूट में विदेहराज जनक के सामने सिर झुकाते हुए उन्हीं पर निर्णय का भार भी छोड़ते हैं। इस प्रकार राम में शीलगुण युक्त कर्तव्य परायणता है और वे युग और समाज

की प्रत्येक परिस्थिति के लिये आदर्श हैं। इस तथ्य का समझना, तुलसी के राम को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात है कि राम परब्रह्म है और उन्हें अपने ब्रह्मत्व का ज्ञान है। इसलिये उनमें संयम भी है और निर्वेद भाव भी। भावावेश में वे कोई कार्य नहीं करते, उनका ब्रह्मरूप जनता को आश्वस्त करना है, मानस के प्राय: सभी पात्र राम के ब्रह्मत्व से परिचित हैं। राम भी स्वयं को ब्रह्म बताकर लक्ष्मण, शबरी, नारद आदि को अपनी भक्ति के संबंध में बताते हैं। हमारी सांस्कृतिक परंपरा का पुष्ट आधार है संयुक्त परिवार। हमारे राष्ट्र की संस्कृति कृषिप्रधान है और राम संयुक्त परिवार के लिये चिरंतन आदर्श हैं। उनका शील एवं प्रेम सब के लिये स्नेह की मंदाकिनी प्रवाहित किये हैं। राम की सरलता तो इतनी है कि दशरथ कैकेई को कहते हैं "जासु सुभाऊ अरिहि अनुकूला, सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला"। इसी प्रकार भरत कहते हैं "अरिहु का अनभल कीन्ह न रामा" अपना वंशाभिमान और उसका गुणगाण करते हुए ही राम अपने गुणों का परिचय देते हैं कि रघुवंशियों का तो सहज स्वभाव है कि परनारी की ओर उनका मन नहीं जाता। स्वप्न में भी रण में शत्रु उनकी पीठ नहीं देखता इस प्रकार का सुशील व्यक्तित्व देखते ही बनता है। राम धर्मात्मा हैं, धर्म उनकी आचार संहिता का प्रमुख केन्द्र-बिन्दु है। वीरनायक विषयक राम की जो कल्पना है वह विभीषण के साथ वार्तालाप में स्पष्ट हो जाती है। जब अपनी साधनहीनता से चिन्तित होकर विभीषण पूछते हैं कि :—

(नाथ न रथु नहि तन पद त्राना,) केहि विधि जितब भीरु बलवाना।।

तो राम ने धर्ममय अपने रथ का वर्णन करते हुए कहा था—शौर्य और धैर्य रूपी पहिये, सत्यशील की ध्वजा-पताका, बल, विवेक, दम और परोपकार के घोड़, क्षमा, कृपा और समता की डोरी, ईश्वर-भजन रूपी सारथी, वैराग्य की ढाल, संतोष को कृपाण, दान का परशु, बुद्धि रूपी प्रचंड शक्ति, श्रेष्ठ ज्ञान का कठोर धनुष, स्वच्छ मन का तूणीर, शम, दम, नियम के बाण और विप्र एवं गुरु के चरणों की पूजा रूपी कवच वाला धर्मरथ जिसके पास है, उसे कौन जीत सकता है।

राम के अति-मानवीय कार्यों में शिवधनुर्भंग था, जिसे "भूप दस सहस एकहि बारा" ने तोड़ने का प्रयत्न किया, पर रहो चढाउव तोरब

भाई, तिलुभर भूमि न सके छुड़ाई'' उसी धनुष को राम ने ''अति लाघव उठाई धनु लीन्हा'' ही नहीं तोड़कर ''प्रभु दोऊ चाप खंड महि डारे, देखि लोग सब भये सुखारे''। उनकी शील समन्वित शक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण परशुराम प्रसंग है। लक्ष्मण और राम में जो अंतर है इस स्वयंवर प्रसंग में पग पग पर उभरता है। जब जनक निराश होकर कहते हैं :—

''कहहु काहि यह लाभु न भावा, काहु न संकर चाप चढ़ावा।
रहऊ चढाउब तोरब भाई, तिलु भर भूमि न सके छुड़ाई ॥
... ...
जो जनतेऊ बिनु भट भुवि भाई, तौ पनु करि होतेऊं न हंसाई ॥

यह सुनकर भी राम विचलित नहीं हुए, लक्ष्मण ने कुपित होकर इन वचनों का परिहार किया, मगर राम ने संकेत से लक्ष्मण को मनाकर प्रेम से अपने पास बिठाया और गुरुशिष्य मर्यादा की रक्षा की। फिर राम ने गुरु की आज्ञा प्राप्त करके धनुभंग किया। इसके बाद परशुराम संवाद हुआ उसे सब जानते हैं। वहां राम ने अपने शील और मर्यादानुरूप व्यवहार से परशुराम तक को प्रभावित किया और साथ ही लक्ष्मण की भी सहायता की अपने वंश गौरव की पूर्ण रक्षा करते हुए :—

''नामु जान पै तुम्हि न चीन्हा, बंस सुभायं उतरु तेही दीन्हा।''

इस पर भी जब परशुराम जी का क्रोध बढ़ता गया तो राम ने सहज-स्वभाव से अपने जातीय गौरव की अनुभूति कराते हुए कहा :—

''जौ हम निदरहि विप्र बदि सत्य सुनुहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेह भय बस नावहि माथ ॥''
देव दनुज भूपति भट नाना ... ...
... ...
विप्र वंस कै असि प्रभुताई अभय होई जो तुम्हहि डेराई ॥

इस पर परशुराम ने राम को अपना धनुष चढ़ाने को दिया जो राम ने खेल ही खेल में चढ़ा लिया और परशुराम जी को विनय एवं बल दोनों प्रकार से संतुष्ट किया।

सागर के किनारे खड़े होकर तीन दिन राम ने विनय की, फिर कुपित होकर धनुष बाण मंगवाया। ''कुरुक्षेत्र'' में दिनकर जी ने लिखा है :—

"क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके दंत गरल हो।"

वैसा ही सिद्धान्त-दर्शन सागरप्रसंग में है :—

"बोले राम सकोप तब भय बिनु होए न प्रीति
लछिमन बान सरासन आनू सोषौं वारिधि बिसिख कृसानू।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीति, सहज कृपन सन सुन्दर नीती।
ममता रत सन ग्यान कहानी, अति लोभी सन विरति बखानी।
क्रोधहि सम कामिहि हरि कथा उसर बीज बए फल जथा
अस कह रघुपति चाप चढ़ावा, यह मत लछिमन के मन भावा
संधानेउ प्रभु विषिख कराला, उठि उदधि उर अंतर ज्वाला।।

बाण खींचते ही "उठी उदधि उर अंतर ज्वाला" पर इसके पहिले तीन दिन उन्होंने विनय की, विनय की मर्यादापूर्ण होने पर फिर अतुलित पराक्रम दिखाया। इसी में उनका रामत्व निहित है। इस उदाहरण को थोड़ा और ध्यान से देखें कितने ही सूक्ति रत्न सामने आते हैं—राम का वैचारिक चिंतक रूप राजनीति कुशलता इत्यादि। इन पंक्तियों का साधारण अर्थ है। तीन दिन बीत गये पर यह जड सागर विनय नहीं मानता तब श्रीराम क्रोध से बोले कि बिना भय के प्रीति नहीं होती। हे लक्ष्मण धनुष-बाण लाओ मैं अग्निबाण से सागर को सुखा दूँ, मूर्ख से विनय, कुटिल से प्रीति, स्वाभाविक ही जो कंजूस हो उससे नीति उदारता का उपदेश, ममता में फंसे व्यक्ति से ज्ञान की कथा, अतिलोभी से वैराग्य वर्णन, क्रोधी से शान्ति की बात और कामी से भगवान की कथा का फल वैसा ही मिलता है जैसे ऊसर में बीज बोने से होता है। यह कहकर उन्होंने शर-संधान किया जिससे सागर के उर में अग्नि भड़कने लगी। एक और स्थान पर राम ने कहा है कि शरीर रक्षा के लिये फोड़ का चीरना और शस्य राशि के लिये घास फूस उखाड़ना अनिवार्य है। इसी प्रकार भारत की रक्षा के लिये, रावण जैसे क्रूर राक्षस का विध्वंस आवश्यक है। भुजा उठाकर वे प्रतिज्ञा करते हैं—"निशिचर हीन करऊ महि" और इस प्रकार वे "जब जब होई धरम की हानी" में कहे गये अपने वचनों को सार्थक करते हैं। गीता में भी भगवान ने कहा :—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥"

राम अप्रतिम धनुर्धारी थे। ताड़ के सात वृक्षों को एक ही बाण से धराशयी करना और बालि का वध इसके उदाहरण हैं। मेघनाद जैसे वीर ने भी राम को "धन्वी सकल लोक विख्याता" कह कर युद्ध के लिये ललकारा। कुंभकर्ण का वध करने से पहिले जब राम ने धनुष को टंकोरा तो—"प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टंकोरा, रिपुदलबधिर भयो सुनि सोरा।" भीषण युद्ध के बाद कुंभकर्ण का वध हुआ। राम रावण के युद्ध के बाद वे सर्वोत्तम वीर के रूप में हमारे सामने आते हैं। रामबाण अमोघत्व का पर्यायवाची होगया उनके समान शस्त्रधारी दूसरा नहीं हुआ। भगवान कृष्ण ने गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए "रामः शस्त्रभृतामहम्" कह कर शस्त्र विद्या के इतिहास में राम की अद्वितीयता स्वीकार की है। उनके बलिष्ठरूप और मस्तगति का वर्णन तुलसीदास जी ने "केहरी कंधर बाहु बिसाला" और "वृषभ कंध केहरि ठवनि" कहकर "सहज ही चले सकल जग स्वामी, मत्त मंजु बर कुंजर गामी" के रूप में किया है। राम कभी युद्धक्षेत्र में विचलित नहीं होते।

"देखि राम रिपुदल चलि आवा, विहंसि कठिन कोदंड चढ़ावा"।

उनकी सदयता में वीर भाव है और वीरता में सदयता है। राक्षसों द्वारा खाए ऋषियों की हड्डियों के ढ़र को देखकर राम के नेत्रों में जल भर आया था और उसी समय भुजा उठाकर दीप्त स्वर में प्रतिज्ञा की थी कि पृथ्वी से राक्षसों का विनाश करूँगा।

"अस्थि समूह देख रघुराया, पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया
निसिचर निकर सकल मुनि खाए, सुनि रघुवीर नयन जल छाए
निसिचर हीन करौं महि भुज उठाय पन कीन्ह।"

वनवास में जयन्त ने उनकी बल-परीक्षा लेनी चाही तो उन्होंने कोई बड़ा शस्त्र भी नहीं उठाया—"सींक धनुष सायक संधाना" तो फिर त्रैलोकी में कहीं भी रक्षा नहीं थी। आकर प्रभु की शरण में आया और दंडस्वरूप एक आंख खोकर चला गया। खर और दूषण की सेना को राम ने देखते देखते नष्ट कर दिया। राम का बलमात्र शारीरिक ही न था उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बुद्धिबल और रणनीति के समस्त कौशल उन्होंने अपनाये।

"जेहि छीजे निशाचर" यह उनका उद्देश्य है। इसकी पूर्ति के लिये युद्ध में बल, बुद्धि, उपाय का प्रयोग धर्म है, इस प्रकार की बात राम स्वयं कहते हैं—सुबाहु और मारीच को तो इसलिये मारा कि वे विश्वामित्र के यज्ञ में बाधा डालते थे पर जब मेघनाद ने यज्ञ करना आरम्भ किया तो उन्होंने उसका विध्वंस ही अपना कर्तव्य समझा क्योंकि दोनों प्रकार के यज्ञों के उद्देश्य अलग थे। ज्योंही विभीषण ने यज्ञ का समाचार दिया तो—

सुनि रघुपति अतिसय सुख माना, बोले अंगदादि कपि नाना
लछिमन संग जाहु सब भाई, करहु विध्वंस जज्ञ कर जाई॥
यही नहीं छल कपट चतुरता सब करने का आदेश दिया।
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई, जेहि छीजे निसिचर सुनु भाई॥

इस प्रकार साम, दाम, दंड, भेद सब में राम पूर्ण निपुण है। बालि वध में तो स्पष्ट ही उन्होंने कपट का आश्रय लिया था। वे अद्वितीय संगठक हैं। राज्य छोड़ बन में आते ही उन्होंने मित्र बनाने आरम्भ कर दिये। निषाध राज से मित्रता की, जटायु से मित्रता की, और जहां कहीं भी गये वहां अपना मित्रवर्ग निर्माण करते रहे। मनुष्य स्वभाव ज्ञान उनकी व्यवहार कुशलता और राजनीतिज्ञता का आधार था। मनुष्य को देखते ही वे उसके गुण-अवगुण और शक्ति को पहचान जाते। विभीषण को शरण मात्र शरणागत वत्सलता से ही नहीं राजनीति के विचार से भी दी। उन्होंने कहा :—

"भेद लेन पठवा दससीसा, तवहु न कछु भय हानि कपीसा।
जग महु सखा निसाचर जेते, लछिमन हनई निमिष महु तेते॥
जो सभीत आवा सरनाई, रखि हो ताहि प्रान की नाई"॥

कि यदि तो सच्चे हृदय से शरणागत है तो मित्रता करूँगा और यदि भेद लेने आया है तो लक्ष्मण के बाण का शिकार हो जायेगा। नीति-कुशल राम ने विभीषण के आते ही अपने हाथों राजतिलक कर लंकाधिपति बना दिया और "रखिहों ताहि प्रान की नाई" कहा ही नहीं, रावण के विभीषण पर शक्ति प्रहार करने पर, स्वयं आगे होकर शक्ति को अपनी छाती पर सहन किया। इस प्रकार उसकी प्राणरक्षा की और अपनी शरणागत वत्सलता का उदाहरण दिया। विभीषण ने उनकी सब अपेक्षायें पूर्ण कीं पर फिर भी वे उसकी परीक्षा लेते गये और जब कई दिन के संग्राम में भी

रावण नहीं मरा, तो उन्होंने इसका भेद विभीषण से पूछा। विभीषण इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और रावण का वध हुआ। इसी प्रकार सीता की खोज करने सहस्रों वानर गये पर राम ने हनुमान जी को स्वर्ण-मुद्रिका दी।

संसार के इतिहास में इस प्रकार का कोई उदाहरण नहीं मिलता जहां कि साधनविहीन होने पर भी किसी एक लोकनायक ने एक प्रबल जाति का विनाश करके अपनी सभ्यता, संस्कृति की रक्षा की हो। विनय, क्रोध, क्षमा का मणिकांचन संयोग राम में है। लोकाचार के रक्षण की मर्यादा और कृतज्ञता-ज्ञापन में राम अद्वितीय हैं। सीता का पता लगाकर लौटने वाले हनुमान से राम जो कुछ कहते हैं वह कृतज्ञता प्रकाशन की चरम सीमा है :—

"सुनु कपि तोहि समान उपकारी, नहि कोउ सुर, नर, मुनि तनु धारी।
प्रति उपकार करौं का तोरा, सनमुख होई न सकत मन मोरा।।"

वाल्मीकिरामायण में उन्होंने कहा है कि हे कपे! मेरे प्रति तुमने जो जो उपकार किये हैं उनमें एक एक के बदले में, मैं तुम्हारे ऊपर अपने प्राण न्योछावर कर सकता हूँ। तुम्हारे शेष उपकारों के लिये तो मैं तुम्हारा ऋणी ही रह जाऊंगा। मैं तो यह चाहूँगा, कि तुमने जो उपकार किये हैं वे मेरे शरीर में ही पच जाएँ, उनका बदला चुकाने का अवसर ही न मिले। क्या परोपकारी व्यक्ति दूसरे का अनिष्ट चाहता है?

मय्येव जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं सखे। जनः परोपकारार्थी विपत्तिमभिकांक्षति ।।

सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्शों की दृष्टि से विचार करने पर लगता है कि वे सदा अन्याय, अत्याचार अधर्म की शक्तियों से युद्ध करते रहे हैं। सामाजिक जीवन में उन्होंने निषादराज गुह और शबरी आदि अछूतों को अपनाया, अनैतिकता और अधर्म के विरोध में निरंतर संघर्ष उन्होंने किया। अहल्या उद्धार की कथा इस बात की द्योतक है कि महापुरुष पतित से घृणा नहीं करते उसमें अपनी शक्ति का संचार कर उसे ऊंचा उठाते हैं। अपने संसर्ग और संस्कार से उन्होंने वनचरों को शक्ति और महत्व दिया, विद्या और शक्ति से मदान्ध भोग-प्रधान संस्कृति के प्रतिनिधि रावण की आसुरी सभ्यता के प्रचार प्रसार को रोका और भौतिक शक्तियों में नगण्य होने पर भी आत्मशक्ति और उदात्त संगठन शक्ति के बल से विजय प्राप्त की। उसके बाद जब विभीषण ने उन्हें लंका में ही रह जाने का निवेदन किया

तो "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" का प्रखर मंत्र हमारे राष्ट्र जीवन को दिया। यह राम जैसे महान व्यक्तित्व से ही अपेक्षित था। लंका भले ही स्वर्णमयी हो, पर वहां रहना मुझे रुचता नहीं। मेरी दृष्टि में जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार की प्रखर राष्ट्रीयता राम जैसे तत्वदर्शी ही की देन है। जीते हुए राज्य की व्यवस्था विभीषण को सौंपकर वे लौटे। राम का शासन आज भी हमारे लिये चिरतन आदर्श है। यथा राजा तथा प्रजा के नियमानुसार रामराज्य में सब सुखी थे। सब लोग धर्म के अनुसार जीवन-यापन करते थे। स्वयं राम मानव जीवन में धर्म के शासन का समर्थन करने के आदर्श उदाहरण हैं। उन्होंने अपने लिये उग्र आचरण-संहिता अपनाई थी और अपने स्वजनों से भी इसी प्रकार की आशा करते थे। एक बार दिये गये वचन के पालन में वे कभी व्यक्तिगत भावना को विघ्न न बनने देते थे। उन्होंने बनवास के अवसर पर अपनी माता से भी कहा था कि इस समय आपका धर्म पति को सान्त्वना देना है। आमरण अनशन की बात करने वाले भरत को उन्होंने कहा था कि यह क्षत्रिय का धर्म नहीं। राम ने स्वयं कहा है मैंने वचन दिया है और प्राण देकर भी प्रण रखना ही है। अपने प्राण, सीता और लक्ष्मण को भी छोड़ना पड़े तो छोड़ दूंगा पर अपने दिये हुए वचनों को नहीं। उनका जीवन सतत पुरुषार्थ का जीवन है। सब से प्रेम रखना और पर-दुःख कातरता उनका धर्म था। वास्तव में मानव धर्म का पूर्ण विकास ही राम हैं। माता-पिता आचार्य और गुरु वर्ग के समीप राम सुविनीत, आदर्श पुत्र और स्नेह-पोष्य हैं। सहचरों और बंधुओं में सर्वजन प्रिय हैं, एक पत्नी व्रती राम सीता के जीवन-सर्वस्व हैं। भ्रातृत्व के गौरव का चरम विकास राम के चरित्र में हुआ है उनका जीवन दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि मधुर चित्रों से चित्रित होने पर भी करुणा रस प्रधान है। सुख नहीं त्याग का अनुसरण ही उनकी मर्यादा है। राम ने अपने को एक सदाचारी आदर्श मनुष्य ही सिद्ध किया है। वे सदगुणों के भंडार थे। सत्य-सौहाद, क्षमा, दया, मृदुता, धीरता, वीरता, गंभीरता, पराक्रम, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, नीतिज्ञता, तेज प्रेम, त्याग, प्रजारंजकता, मातृ-पितृभक्ति, मैत्री, शरणागत वत्सलता, सरलता, प्रतिज्ञापालन, बहुज्ञता आदि सब गुणों का मर्यादा पुरुषोत्तम राम में पूर्ण विकास था। "रामो द्विर्नाभिभाषते" कि राम एक बात को दो प्रकार से नहीं बोलते। इसी प्रकार कहा जा सकता है कि "रामो विग्रहवान् धर्मः।" "सत्य संध दृढव्रत रघुराई" मानस में तुलसी

कहते हैं और यह भी कि "रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाहु वरु वचन न जाई" इसी प्रकार उनकी वीरता के विषय में प्रसिद्ध है "द्विशरं नाभिसंधत्ते" कि राम दूसरा बाण संधान नहीं करते। मानवमात्र से प्रेम राम के चरित्र की सुन्दरतम विशेषता है।

राम के लोकनायक स्वरूप का सर्वोत्तम उदाहरण बालि को मारने और सुग्रीव से मित्रता करने में है, इसे थोड़ा विस्तार से देखें। राम बालि जैसे बलशाली से मित्रता कर सकते थे, बालि और रावण में सन्धि थी। रावण भी स्यात बालि का कथन अस्वीकार न कर सकता, पर राम शक्ति के मद में अँधे दुराचारियों को प्रोत्साहित नहीं करना चाहते थे। बलवान समर्थ पर उद्धत और स्वेच्छाचारी अन्यायी का निग्रह और दमन तथा सदाचारी दीन की सहायता कर उसे बल प्रदान कर, उसे योग्य बनाना यही लोकनायक का वास्तविक धर्म है। इसी से राम ने बलवान और अन्यायी बालि का दमन कर, दीन सुग्रीव को मित्र बनाया। राम की राजनीति कुशलता का सर्वोत्तम उदाहरण इस बात में है कि राक्षसी और वानरी ये दो प्रबल शक्तियां रावण और बालि की संधि के फलस्वरूप एक दुर्जय शक्ति बन हमारी संस्कृति को समाप्त करने की ओर अग्रसर थीं उन्हें परस्पर प्रतिद्वन्दी बनाकर एक दूसरे के विरोध में खड़ा कर दिया और जो शक्ति-संतुलन राक्षसों की ओर जा रहा था राम की ओर झुक गया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति की रक्षा, राक्षस संस्कृति के दुष्प्रभावों से हो सकी। राम ने वानर जाति में प्रचलित और सम्मानित गुरिल्ला आक्रमण पद्धति से बालि का वध किया था, फिर भी बालि ने जब उनपर व्यंग्य किया "धर्म हेतु अवतरेहु गोसांई, मारेहु मोहिं व्याध की नाईं"—तो राम ने जो इसका उत्तर दिया—उससे लगता है कि भगवद्गीता के श्रीकृष्ण ही बोल रहे हैं जब उन्होंने अर्जुन को शस्त्र उठाकर कर्ण का वध करने की प्रेरणा दी थी। भाव और भाषा का साम्य देखते ही बनता है। राम ने कहा था—"जो स्वयं अधर्माचरण करते हैं उन्हें दूसरे से धर्मानुसार आचरण चाहने का कोई अधिकार नहीं है। तूने राजधर्म त्याग कर अनीति का आश्रय किया। पुत्रवधू जैसी बंधु पत्नी को बलपूर्वक अपने घर में रख लिया, इसलिए तेरा वध धर्म ही है। धर्म की गति अति सूक्ष्म है वह इस प्रकार स्थूल दृष्टि से नहीं जाना जा सकता। वेदों से, स्मृतियों से, ऋषियों के आचरण से औरअपने शुद्ध अन्तःकरण से धर्म का निर्णय किया जाता है। मैं सबका सुहृद् हूँ, मेरे बाण से तुम्हारी सद्गति होगी।

राम के चरित्र की उदारता की चरम सीमा हमें वहां दीखती है जब वे रावण की मृत्यु पर विषादमग्न विभीषण को जो रावण के संस्कार

में कोई रुचि नहीं ले रहा था समझाते हैं कि—विभीषण! वैर विरोध मृत्यु तक ही हुआ करते हैं। अब हमारा संपूर्ण प्रयोजन समाप्त हो गया। अब वह जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा भी। इसलिये अब तुम इसका संस्कार करो।" रावण की मृत्यु से पहिले वे लक्ष्मण से भी उसके प्रति प्रशंसा भाव से ही बात करते हैं और उसे रावण के पास ज्ञान-शिक्षा के लिये भेजते हैं। अयोध्या में लौटकर राम बार बार कैकेई से ही मिलते हैं कि उनके मन से संकोच भाव दूर हो जाय। तुलसीदास जी ने राम में "वज्रादपि कठोरानि मृदूनि कुसुमादपि" चरित्र का विकास किया है। उनकी लोकतंत्री भावना राम के इन शब्दों में प्रकट होती है:—

"सुनुहु सकल पुरजन मम बाणी. कहऊ न कछु ममता उर आनी
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई, सुनहु करउ जो तुम्हरी सोहाई।
...
जौ अनीति कछु भाषौं भाई, तौ मोहि बरजहु भय विसराई।।

तभी तो रामराज्य ऐसा था कि जिसमें "दैहिक, दैविक, भौतिक तापा, राम राज नहि काहुह व्यापा"। एकबार तमसा नदी के पावन तट पर वाल्मीकि जी ने नारद जी से पूछा था "मुने! इस समय संसार में गुणवान, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है? सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हितकारक, विद्वान, सामर्थ्यशाली और सुन्दर पुरुष कौन है? मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, कान्तिमान और किसी की निन्दा न करने वाला कौन है तथा संग्राम में कुपित होने पर किससे देवता लोग भी डरते हैं?" नारद जी ने उत्तर दिया "इक्ष्वाकुवंश" में प्रकट हुए एक ऐसे महापुरुष हैं जो लोक में राम नाम से विख्यात हैं। वे बुद्धिमान, मनको वश में रखने वाले, महाबलवान, कान्तिमान, धैर्यवान और जितेन्द्रिय हैं। नीतिज्ञ, वक्ता, शोभाशाली और शत्रु संहारक हैं। ... ... वे धर्म के ज्ञाता, सत्य-प्रतिज्ञ और प्रजा के हित-कारक हैं। यशस्वी, ज्ञानी और वेद-वेदांग के तत्ववेत्ता हैं ... ... संपूर्ण गुणों से युक्त राम गंभीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं, उनका चरित्र एक जीवन दर्शन बनकर सामने आता है। समाज के साधारण घटक का जीवन किसी प्रकार पुरुषार्थपूर्ण बनाकर कुण्ठा और क्षोभ से मुक्त किया जा सकता है। राम ने मन, प्राण, संकल्प की शक्ति से यही करने का प्रयास किया है। उनका जीवन कर्मप्रधान था, आचरण ही उनके धर्म का मूल था। राम ने अपने जीवन में वेदना, पीड़ा, करुणा को स्वीकार किया, क्योंकि जो संसार का कल्याण करना चाहते हैं, उन्हें सुख नहीं मिलता। विनय-पत्रिका में तुलसी कहते हैं, "ऐसो को उदार जग माहिं, बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहि" वास्तव में राम मर्यादापुरुषोत्तम थे।

रामचरितमानस में भक्तिरस

श्रीधर्मचन्द्र 'प्रशान्त'

मध्ययुग का साहित्य भक्तिरस से ओतप्रोत है। इसलिए कि उस समय की परिस्थितियां ही ऐसी थीं कि जनता का ध्यान भगवान की ओर था और समकालीन कवियों ने जनता का अग्रणी बनकर उनको भगवान का साक्षात्कार करवाया। उस समय भक्ति की धारा दो रूपों में बह रही थी। सगुणभक्ति और निर्गुणभक्ति। निर्गुण में नानक और कबीर का स्थान है और सगुण में तुलसी, सूर, मीरा, केशव तथा देव के नाम उल्लेखनीय हैं। आगे, सगुणधारा रामभक्तिशाखा और कृष्णभक्तिशाखा में विभक्त हो गयी। रामभक्ति के अग्रणी तुलसीदास और कृष्णभक्ति के प्रमुख कवि सूर थे।

तुलसी और सूर दोनों ही राम और कृष्ण के अनन्य भक्त थे। दोनों भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। दोनों ने भगवान का उज्ज्वलरूप जनता को दिखलाया है। दोनों की भक्तिभावना में बड़ा अन्तर नहीं है। इतना अवश्य है कि तुलसी राम को परम ब्रह्म के रूप में देखते हैं परन्तु सूरदास कृष्ण को बालक के रूप में भगवान को पाते हैं।

जहां तक कि तुलसी का सम्बन्ध है, उन्होंने रामचरितमानस के रूप में महान काव्य का सृजन किया। यह ग्रन्थ उच्चवर्ग की जनता के लिए तो है, परन्तु साधारण जनता के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण। यह मानवता का महाकाव्य है। तुलसीदास प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने चारों वेदों छओं शास्त्रों का पूर्ण अध्ययन किया था। उनके लिए संस्कृत में काव्य लिखना कठिन न था। परन्तु उनका लक्ष्य 'जनहिताय' था। इस कारण उन्होंने लोकमंगल की दिव्य रचना देशवासियों को दी जो आज देश की नहीं, विश्व-भर को प्रभावित कर रही है।

यद्यपि गोस्वामी जी ने मानस की रचना 'स्वान्तः सुखाय' के लिये की परन्तु वह 'जनहिताय' के लिये बन गई। यह एक ऐसी विशिष्ट रचना है

जिसकी तुलना में भारत का ही नहीं, विश्व साहित्य का कोई भी ग्रंथ ठहर नहीं सकता। इसीलिये इसे गीता का दर्जा दिया गया है। परन्तु एक प्रकार से मानस गीता से भी ऊपर हो गया। संस्कृत में होने के कारण गीता सुनने का महान ग्रंथ है, पढ़ने का नहीं।

मानस भक्तिरस से सिञ्चित महाकाव्य है, इसमें सत्यं शिवं सुन्दरम् की पूर्ण भावनायें हैं जो इस लोक में अलौकिक प्रभाव रखने का दावा करती हैं। गोसांई जी ने मानस की रचना एक दीन भक्त की दृष्टि से की जो संभवतः उन्होंने अपने लिए की परन्तु विश्व कल्याण के लिए यह एक अद्वितीय महाकाव्य सिद्ध हो गया।

आज रामचरितमानस को लिखे चार सौ वर्ष हो चुके हैं। पिछले वर्ष में साहित्यकारों और विद्वानों ने इसका मूल्यांकन किया और जितनी गहराई में वे गए, उन्होंने इसे उतना ही उत्कृष्ट और बेजोड़ पाया। भक्ति की अविरलधारा इसकी प्रत्येक चौपाई और प्रत्येक दोहे में है। मानस के नायक राम हैं जो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वे आदर्श पुत्र हैं, आदर्श पति हैं, आदर्श भ्राता हैं और सब से अधिक आदर्श प्रजावत्सल हैं। प्रजावत्सलता का जो उदाहरण उन्होंने दिया, उसकी मिसाल विश्वभर में नहीं मिल सकती। इसका प्रत्येक पात्र भक्त है और वे सब के प्रिय हैं। यही इसकी महानता है, यही इसके विश्वव्यापी प्रभाव की कुंजी है।

मानसचतुःशती के अवसर पर भारतवासियों ने इस युग के कवि को एक बार पुनः देखा, सुना और यही निष्कर्ष निकाला कि यह मानव मूल्यों की महान कृति है। भारत देश का सौभाग्य था कि इस जाज्वल्यमान नक्षत्र का चार सौ वर्ष पूर्व अवतरण हुआ जो हमारे लिये ऐसी निधि बन गयी जो आने वाले युगों में हमारे लिए महान धरोहर बनी रहेगी! भारत वेदों और उपनिषदों के लिये अपने को गौरववान समझता है परन्तु रामचरितमानस का स्थान भी उनसे कम नहीं। वह सदा के लिये शाश्वत है, अमर है। यह सांस्कृतिक रसायन है। मानवहृदय के लिये अमृत और मस्तिष्क के लिये सुगन्धित पवन हिलोरे का काम दे रहा है। भक्तिरस के साथ-साथ मानस में भारतीय परम्परा व निष्ठा का पूरा सामञ्जस्य है। भक्तिरस वाल्मीकिरामायण में भी है, अध्यात्मरामायण में भी परन्तु वाल्मीकि ने भक्ति को उजागर करते करते अपने कवित्व को नहीं छोड़ा। वे राम का भगवान होना कभी कभी सामने रखते हैं परन्तु रामचरित-

मानस में पगपग पर प्रत्येक शब्द में राम है:—

कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुख मूल।
सादर सुनहि जे तिन पर राम रहहि अनुकूल।।
देह धरे कर यह फल पाई, भजिअ राम सब काम बिहाई।
सोई गुनाय सोई बड़ भागी, जो रघुबीर चरण अनुरागी।।

रामचरितमानस का आधार वाल्मीकिरामायण है। वह आदिकाव्य है। उसके बाद अध्यातमरामायण और चंपू रामायण हैं। इनके अतिरिक्त रामकथा महाभारत में, कालिदास के रघुवंश में है, बौद्धग्रथों और जैन-साहित्य में है। तमिलभाषा के कम्ब रामायण में है।

वाल्मीकि अपने रामायण में कहीं नहीं कहते हैं कि राम मनुष्य नहीं परमात्मा हैं। इसकी झलक कहीं कहीं मिलती है। कम्ब रामायण में कम्ब ऋषि कहीं भी नहीं लिखते कि राम भगवान हैं और संसार में लीला दिखलाने के लिये आये हैं। परन्तु रामचरितमानस में केवल भक्ति है। पढ़नेवाले को बार बार स्मरण दिलाते हैं कि भगवान राम परम ब्रह्म हैं वे भूमि पर नर रूप धारण करके केवल लीला दिखलाने आये हैं।

"रघुपति तब जाना सब कारन, चले हरषि सुरकाज संवारन"।

रामचन्द्र यह सब कुछ जानते हैं कि हमारा पृथ्वी पर जन्म केवल दुष्टों को मारने और भक्तों को परित्राण देने के लिए हुआ है।

मेघनाद द्वारा लक्ष्मण की मृत्यु हो गयी। राम केवल लोकाचार के लिये रोते हैं। उन्हें सब पता है कि भविष्य में क्या होने वाला है।

रामचरितमानस में भक्तिरस का जो सागर बहाया गया है उसका उदाहरण हमें प्रत्येक प्रसंग में मिलता है दृष्टान्त के तौर पर जब विश्वामित्र ऋषि राजा दशरथ के पास राम को मांगने आये तो वाल्मीकिरामायण में इसकी व्याख्या कुछ और ढंग से हुई है और रामचरितमानस में कुछ और तरह से। दोनों में अन्तर सामने आ जाता है। ऋषि पूछते हैं कि आप सकुशल हैं तो दशरथ उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं जैसे वर्षा न होने पर क्षुधा द्वारा पीड़ित देश में जैसे वर्षा आनन्द ला देती है उसी प्रकार आपका आगमन हुआ है। ऋषि कहते हैं आप प्रतिज्ञा करें, मैं कुछ मांगने आया हूँ। राजा प्रण करते हैं। ऋषि जब कहते हैं कि मैं कुछ समय के लिये

राम को अपने साथ वन में ले जाना चाहता हूँ। राक्षस लोग मेरे यज्ञ में बाधा डाल रहे हैं, उनका संहार रामचन्द्र द्वारा होगा :—

"अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।"

विश्वामित्र की बात सुनकर दशरथ को मूर्छा आ जाती है। मूर्छा टूटने पर वे कुछ असंगत बातें करते हैं जिससे ऋषि को क्रोध आ जाता है। रामचन्द्र सोलह वर्ष के हैं, कोमल उनका शरीर है।

राजा स्वयं राक्षसों से लडने को कहते हैं। परन्तु ऋषि को घोर क्रोध चढ़ जाता है। वे कांपने लगते हैं। उस समय उनको वसिष्ठ ऋषि समझाते हैं। राजा! तुम्हारे लड़के के अच्छे दिन आने वाले हैं तुम उसके रास्ते और उन्नति में रुकावट न बनो। उसे विश्वामित्र के साथ भेजने में आनाकनी मत करो। वे हर तरह से उनकी रक्षा करेंगे। वैसे रामचन्द्र मनुष्य नहीं हैं, भगवान हैं। सभी विद्यायें उन्होंने विश्व में फैलाई हैं।

"आकाशात् पतति तोयं यथा गच्छति सागरम्।" जैसे गगन से जल गिरता है और समुद्र में जा मिलता है। राजा का मोह टूटता है। वे रामचन्द्र को बुलाते हैं। बड़ा लम्बा प्रसंग दिया है वाल्मीकि ने परन्तु रामचरितमानस में तुलसीदास ने इस घटना को संक्षिप्त कर दिया। इसमें महाराजा दशरथ ब्राह्मणों को साथ लेकर ऋषि का स्वागत करनेवाले हैं और घर आने पर चारों पुत्रों को उन्हें प्रणाम करने को कहते हैं। 'अनुज समेत देहु रघुनाथा"। ऋषि मांगते हैं राम और लक्ष्मण को। दशरथ प्रसन्न हो उठते हैं। "हृदय हर्ष माना मुनि ज्ञानी"।

"चौथेपन पायहु सुतचारि बिप्र वचन नहिं कहेउ विचारी"।

वे सहर्ष राम और लक्ष्मण को भेज देते हैं। कहीं तेजी नहीं, कड़वाहट नहीं। राजा प्रसन्न होते हैं और ऋषि को उनका प्रेम देखकर बड़ा हर्ष होता है। वे राम और लक्ष्मण को लेकर चल देते हैं। वाल्मीकि और रामचरितमानस में इस प्रकार के प्रसंगों में अन्तर दिखाई देता है। वाल्मीकि ने घटनाओं की सत्यता पर जोर दिया है परन्तु तुलसीदास में यह बात नहीं। उनके हृदय में भक्ति की गंगा बह रही है और उसकी स्निग्धधारा वह प्रत्येक पर गिराना चाहते हैं। इसीलिए उन्होंने प्रत्येक प्रसंग और घटना को भक्तिभाव में डुबो दिया है। वे बारबार पाठक को

स्मरण दिलाते हैं कि रामचन्द्र भगवान हैं और मानव लीला को दिखलाने आए हैं। भगवान मनुष्य रूप में पृथ्वी पर उतरे हैं और लीला दिखला रहे हैं।

स्वर्ण मृग देखकर जानकी राम को उसे पकड़ने के लिये भेजती है। वाल्मीकि कहते हैं:—

असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।।

इसी प्रसंग को तुलसीदास इस प्रकार कहते हैं।

यह विधि सोचत सोच-विमोचन × × ×
नरगति भगत कृपालु देखाई।

"रघुवंश" में रामकथा लिखते लिखते कितने ही स्थलों पर कालिदास शृङ्गार में बह जाते हैं। 'कुमारसम्भव' में पार्वती का सौन्दर्य बखानने में वे तनिक भी संकोच नहीं करते और सीता प्रसंग में इन्द्र के बेटे जयन्त का कामरूप में सीता के स्तन पर चोंच मारने की बात अश्लीलता तक चली जाती है। परन्तु रामचरितमानस में यही प्रसंग बड़े सुन्दर तरह से उल्लिखित हुआ है। काकरूपी जयन्त जानकी के पांव पर चोंच मारता है।

रामचरितमानस में भक्तिरस का सब से अधिक प्रभाव है। भक्ति के कारण यह महान ग्रन्थ है, जो धर्मशास्त्रों में सम्मिलित किया जा रहा है। भक्ति और धर्म पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिये धर्म के सभी तत्त्व इसमें मौजूद हैं। इसीलिये यह महाकृति घर घर में व्यापक हो गयी। परन्तु इसका सौन्दर्य यह है कि भक्तिरस और धर्मशास्त्र का अंग होते हुए भी यह नीरस नहीं है। इसमें भक्त भी आनन्द प्राप्त करते हैं, साहित्यकार भी और साधारण मनुष्य भी। यही कारण है कि इससे बढ़कर और कोई ग्रन्थ जनप्रिय नहीं बन पाया।

रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। मर्यादा का पालन करने में उनका सूक्ष्मपन जितना इस ग्रन्थ में उभरा है, वह किसी अन्य कृति में नहीं। सभी रामायणों का अवलोकन किया जाये तो सब से अधिक रामचरित्र यदि कहीं उज्जवल हो कर निखरा है तो वह रामचरितमानस में। यही कारण है कि स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कह दिया—"राम तुम्हारा चरित्र ही काव्य है।" वे रामचरितमानस को वेद उपनिषदों का सक्षेप मानते हैं। डाक्टर विद्यानिवास मिश्र अपनी पुस्तक "साहित्य चेतना" में

लिखते हैं कि "रामचरितमानस पर संस्कृत के ग्रंथों में गीता का प्रभाव अधिक पड़ा है। गीता को यदि परमहंसों की संहिता कहा जाये तो मानस को परमहंसों की भूमि कहा जा सकता है"।

तुलसी कहते हैं :–

"सीया राममय सब जग जानी, करुऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी ।।"

तुलसी हृदय में भक्ति और ज्ञान का दीपक जलाते हैं। भक्ति उनकी आधारशिला है। इसीपर वह प्रत्येक पात्र को परखते हैं। चाहे हनुमान हो, चाहे लक्ष्मण हो, चाहे सुग्रीव हो, जामवन्त हो, वे सभी धर्म का रूप हैं और जो रामभक्ति से विमुख हैं, वे उनके लिये निकृष्ट हैं, तमोगुण से भरे पड़े हैं, जिनमें मन्थरा, शूर्पनखा और रावण इत्यादि पात्र रखे जा सकते हैं।

उनके राम भक्तवत्सल हैं। जो उनके प्रेमी हैं चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हो, तुलसी ने उन्हें बड़े स्नेह और प्रम से पेश किया है। रामकेवट संवाद में केवट की भक्ति का जो विलक्षण चित्र मिलता है, उसे पेश किया है। रामकेवट संवाद में केवट की भक्ति का जो विलक्षण चित्र मिलता है, उससे हृदय प्रम से गदगद हो उठता है। इसी प्रकार शबरी के प्यार को अंकित करने में जितना स्नेह उन्होंने बहाया है, वह अद्वितीय है। उस संदर्भ में लिखते हैं :—

प्रथम भगती सन्तन कर संगा, दूसरी रवि मन कथन प्रसंगा ।।

आगे लिखते हैं :—

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा, पंचम भजन सो वेद प्रकासा।
छठ दम सीस विरति बहु करमी, निरत निरन्तर सज्जन धरमी ।।

तुलसी स्वयं परम भगत हैं। भक्ति उनके रोम रोम में समाई है। वे स्वयं भक्त हैं और भगत के वे बड़े पारखी हैं और भक्ति के लक्षणों का वे उदाहरण देते हैं। भक्त क्या है?

वैर न विग्रह आस न त्रासा, सुखमय ताहि सदा सब आसा। ०।।

मानस के सभी पात्र भगत हैं, दुष्टों को छोड़कर। दशरथ, कौशल्या, सीता, भरत व लक्ष्मण तो भक्ति के दिव्य स्वरूप हैं ही परन्तु छोटे छोटे पात्र जिनमें कवट, शबरी भी हैं, भक्ति के उज्ज्वल दीपक हैं। इसीलिय

मानस को मुख्यतः भक्ति का महान ग्रन्थ कहा गया है। इसके पात्र बाह्य रूप से भी भक्त हैं और अन्दर से भी। उनमें कोई कपट नहीं छल नहीं। उन सबकी भक्ति हिमालय की तरह ऊँची है और उसपर आच्छदित हिम की तरह वह स्वच्छ। बालकाण्ड में स्वायम्भुव मुनि के मुख से वे कहलवाते हैं :-

सोई सुख सोई गति भगति सोई निज चरन स्नेहु।
सोई विवेक सोई रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु।।

मानस में मनुष्य तो प्रभु से भक्ति की याचना करते हैं परन्तु पशु पक्षी भी और जहां कहीं धर्मशास्त्रों का वर्णन आया है, वे भी राम से भक्ति की ही प्रार्थना करते हैं :—

करुणायतन प्रभु सद्‌गुनाकर, देव यह वर मांग ही।
मन वचन कर्म विकार तजि, तव चरण अनुरागहिं।।

मानस में दुष्टात्मा तो है परन्तु उनकी पत्नियों को भी भक्ति की एक दो सीढ़ी तक पहुँचा दिया है। मेघनाद मारा जाता है। उसकी पत्नी उसका शरीर मांगने आती है। वह वैर को भूल जाती है। उसी प्रकार मन्दोदरी के मुख से भी रामभक्ति का प्रसंग मिलता है :—

"नाथ भजहु रघुनाथहि धवल होइ अहिवास।"

रामचरितमानस में भक्तों की श्रेणी में हनुमान का दर्जा सब से ऊपर है। उन्होंने हनुमान की अनन्य भक्ति को देखते हुए कहा था—"मम प्रिय लछमनि ते दूना" इसलिये कि लक्ष्मण को अपनी भक्ति पर अहंकार हो गया था। यह वाक्य सुनकर लक्ष्मण को बडा क्षोभ हुआ कि वे बाल्य-काल से भाई की सेवा कर रहे हैं। उनकी रामके प्रति निष्ठा और भक्ति अगाध है परन्तु हनुमान अभी हाल ही में आया है और वह उनसे आगे क्यों होगया, इसका उसके मन में खटका लगा। एक दिन उसने पूछ ही लिया कि किस बात से आपके चरणों में अगाध भक्ति हो सकती है।

राम ने कहा :—

थोरेहि महु सब कहहुँ बुझाई, सुनहु तात मति मन चित लाई।।

इसका अर्थ है कि अन्तःकरण में अहंकार को रखकर भक्ति नहीं हो सकती। भक्ति भावना को पूर्णतया प्राप्त करने के लिये मन की शुद्धि परम आवश्यक है। लक्ष्मण ने यह समझ लिया और अपनी भक्ति को चरितार्थ किया :-

भगति योग सुनु अति सुख पावा, लक्ष्मनि प्रभु चरनहि सिर नावा ।।

उधर भरत की भी भ्राता के प्रति अगाध भक्ति है। उसने अपने त्याग और प्रीति का जो ज्वलन्त उदाहरण रखा है वह भी अद्वितीय है :-

नहि पद त्रान सीस नहीं छाया, प्रेमु नेमु व्रतु धरमु अभाया ।।

भरत की निष्ठा कहीं कहीं मानस पर पराकाष्ठा में पहुँच गयी है। रामवनवास के समय वह सन्यासी का रूप धारण कर सिंहासन पर खडाओं रखकर उन्हीं के नाम राज्य करते हैं :—

जटाजूट सिर मुनि पट धारी, महिखणि कुस सांवरी सवारी ।।
आसन वसन वासन व्रत नेमा, करत कठिन ऋषि परम सप्रेमा ।।
भूषण वसन भोग सुख भूरी, मन तन वचन तजे तिन तूरी ।।
राम विलासु राम राम अनुरागी, तजत वमन जिमि जन बड़ भागी ।।

मानस में केवल दो एक खल पात्रों को छोड़कर सब की राम के प्रति श्रद्धा है, भक्ति है और सभी अपने को एक से बढ़कर राम भगत मानते हैं। वही भक्ति पाठक के हृदय में द्रवित होती है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने महाकाव्य में भक्ति का जो समुद्र बहाया है, वह विश्वभर में लोकप्रिय होगया। चार सौ वर्ष में भारत के साहित्यिक इतिहास में कोई भी काव्य इतनी लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सका जितनी इसको मिल चुकी है यह एकमात्र हिन्दी ग्रन्थ है। इसका अनुवाद प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त विश्व की कई भाषाओं में भी हो चुका है।

रामकथा हमारे जीवन के नैतिकमूल्यों और सांस्कृतिक मान्यताओं का जो आलोकस्तम्भ बन चुकी है, उसका समस्त श्रेष्ठ गोसांई जी को ही मिल सकता है। यदि मानस में भक्ति का मुख्यतः सम्पुट नहीं रहता तो यह भी अन्य रामायणों को भान्ति विश्वव्यापकता न ग्रहण कर सकता।

हम इस महान ग्रंथ और उसके रचयिता को कोटिशः धन्यवाद देते हैं।

रामचरितमानस में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण

डा० अयूब 'प्रेमी'

रामचरितमानस हिन्दू-संस्कृति का महाग्रन्थ है। इस महाकाव्य में लगभग छः हजार वर्षों के भारतीय दर्शन और चिंतन का सार समाविष्ट किया गया है। महत्व की दृष्टि से इस ग्रन्थ का सम्मान भी वैसा ही है जैसे कुरान शरीफ़ और बाइबिल का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है उसी प्रकार तुलसी की रामचरितमानस का भी अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। यही कारण है कि रामचरितमानस का अनुवाद अनेक विदेशी भाषाओं में हो चुका है।

रामचरितमानस की कथावस्तु केवल भारत में ही लोकप्रिय नहीं है अपितु संसार के विभिन्न देशों में इसे आधार बनाकर काव्य की रचनाएँ की गई हैं। संसार की बहुत सी भाषाओं में राम-कथा किसी न किसी रूप में मिलती है। द्रविड़ देशों, सिंहल (लंका), कश्मीर, तिब्बत, खोतान, जावा, बाली, मलाया, हिंदचीन (इंडोनेशिया), श्याम, (कम्बोडिया), बर्मा और चीन तक में रामकथाएँ पाई जाती हैं इस प्रकार रामचरितमानस की कथावस्तु अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की है।

सर्वधर्म समन्वय की भांति तुलसी ने उस समय के विभिन्न रूपों का समन्वय किया है। उन्होंने लोक और शास्त्र का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण-सगुण का, ब्राह्मण-चांडाल का, भक्ति-ज्ञान और कर्म का, शैव-शाक्त और वैष्णव धर्म का पूर्णरूपेण समन्वय किया है। वे जाति-पांति से ऊपर उठकर मानवतावादी समानता के दृष्टिकोण से मिलते-जुलते आदर्श का पक्ष लेते हैं:—

जाति-पाँति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दृष्टिकोण का आधार मनुष्य के अन्दर के आत्मा का ऐक्य था। इसके ठीक विपरीत आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीयता का आधार सर्वथा भौतिक एवं व्यावहारिक है। राजनीति के क्षेत्र में इसकी प्रेरणा मार्क्स के साम्यवाद से मिली है। जिस प्रकार तुलसी का स्वान्त:

सुखाय दृष्टिकोण लोकहिताय हो गया उसी प्रकार पाठक रामचरितमानस से अपनी अपनी भावना के अनुसार अनेक रूप ग्रहण कर सकते हैं :—

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी ॥

आधुनिक युग में उदार दृष्टिकोण की विशेषता को अन्तर्राष्ट्रीय भावना में अधिक प्रश्रय मिला है और विशेषकर जनवादी भावना अन्तर्राष्ट्रीयता के युग की उपज कही जा सकती है। रूसी विद्वान वारान्निकोव तुलसी की भाषा को मुख्य जनवादी तत्व मानते हैं। उनके मतानुसार तुलसी की भाषा रामचरितमानस में स्वाभाविक है, मिठास लिये हुए है तथा जनवादी है जिससे उनकी प्रगतिशीलता का परिचय मिलता है :—

कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लागि पछताना ॥

तुलसी की भाषा का जनवादी रूप इस तथ्य को सूचित करता है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय भावना में पाये जाने वाले व्यापक दृष्टिकोण को महत्व देते हैं। तुलसीदास न तो मुस्लिम धर्म के विरोधी थे और न मुस्लिम शासन के। इसी प्रकार उन्हें फारसी और अरबी भाषा से भी कोई घृणा नहीं थी। जिस भाषा में वे लिखना चाहते थे वह फारसी या संस्कृत न होकर जनवादी तत्व को परिपोषित करने वाली 'भाखा' है :—

भाखा भणित मोरि मति थोरी, हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥

तुलसी ने इसी 'भाखा' में रामचरितमानस की रचना की है। तुलसी की उदारता यही है कि इस धार्मिक महाकाव्य में भी अरबी, फारसी शब्दों के निस्संकोच प्रयोग अनेक स्थलों पर मिलते हैं। तुलसी में भाषा को लेकर साम्प्रदायिकता की गंध भी नहीं है। तुलसी चाहते तो अरबी फारसी शब्दों का बहिष्कार बड़ी आसानी से कर सकते थे लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व-सम्पन्न विधायक कलाकार के लिए प्रगतिशील होना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए तुलसी द्वारा प्रयुक्त शब्द देखिये :—

१. गनी गरीब ग्राम नर नागर। २. साहिब तुलसीदास सो, सेवक तुलसीदास।
३. वर लायक दुलहिन जग नाही।
४. बहु जिनस प्रेतपिशाच जोगि जमात बरनत नहिं बने।
५. बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही।
६. चारु बज़ार विचित्र अँबारी। ७. कुम्भकरण कपि फौज बिडारी।
८. राम धनुष तोरव सक नाहीं।

रामचरितमानस में दो देशों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ नियम निर्दिष्ट किये गये हैं जो आजकल के अन्तर्राष्ट्रीय कानून के आधार माने जासकते हैं। प्राचीनकाल में विशेषकर रामायण काल में इन नियमों का सभी स्वतंत्र देश दृढ़ता से पालन करते थे। यदि कोई देश उन नियमों का उल्लंघन करता तो उस देश के विधायक अपनी सरकार का विरोध करते थे। रामचरितमानस में इस प्रकार के उल्लंघन का वर्णन बडी विशदता के साथ हुआ है। जब रावण के दरबार में विभीषण ने रावण को नीतिपरक सलाह दी कि तुरन्त सीता को लौटाकर राम के साथ समझौता कर लीजिए तब माल्यवान नामक मन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों ने विभीषण की सलाह का समर्थन किया :—

माल्यवंत अति सचिव सयाना, तासु बचन सुनि अति सुख माना ।।
तात अनुज तव नीति विभूषन, सो उर धरउ जो कहत विभीषन ।।

जिस प्रकार वियतनाम की युद्ध विषयक नीति का विरोध अमेरिका में हुआ उसी प्रकार रावण की युद्धनीति का विरोध मन्दोदरी, विभीषण, मारीचि तथा अनेक मन्त्रियों ने किया। रावण ने विभीषण और मन्त्रियों की सलाह ठुकरादी और विभीषण का भरे दरबार में अपमान किया :-

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा रिपुकर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।
कहसि न खल अस को जग माहीं, भुजबल जाहि जिता मैं नाहीं ।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा, अनुज गहे पद बारहिं बारा ।।

परिणाम यह होता है कि अपमानित होकर विभीषण राम की शरण में पहुँच जाते हैं। आधुनिक युग में जैसे भारत ने तिब्बत से आने वाले दलाई लामा को शरण दी उसी भाव से राम ने विभीषण को शरण दी। यहीं तक नहीं बल्कि जिस प्रकार आज अन्तर्राष्ट्रीयता के युग में प्राय: निष्कासन में सरकारें (Government in Exile) बना करती हैं उसी प्रकार राम ने भी विभीषण को लंकेश कहकर राजतिलक कर दिया :—

सुनु लंकेस सरल गुन तोरे, तात तुम अतिसय प्रिय मोरे ।।
(सुन्दर कांड ४८-१)

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं, मोर दरसु अमोघ जग माहीं ।।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा, सुमन वृष्टि नभ भई अपारा ।।
(सुन्दर कांड ४८-५)

यहींतक शरणागत के प्रति कर्तव्य-निर्वाह सीमित नहीं अपितु जब युद्ध में रावण विभीषण पर शक्ति छोड़ता है तब वे आगे आकर अपने वक्षस्थल पर झेलते हुए विभीषण को पीछे धकेल देते हैं :—

आवत देखि सक्ति अति घोरा, प्रनतारति भंजन पन मोरा।
तुरत विभीषन पाछे मेला, सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥
(लंका कांड ७५-३)

अंत में रावण को पराजित करके 'बंगला देश' की भांति राम विभीषण को राज्य सौंप देते हैं। लंका की भूमिगत समग्रता के प्रति यह सम्मान की भावना है। यह रूप भी पंचशील के प्रथम नियम के अनुसार है जहां यह माना गया है कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी अपनी भौगोलिक सीमाएँ हैं तथा उन सीमाओं के अन्तर्गत भू-भाग पर उस राष्ट्र का सम्पूर्ण अधिकार है। रामचरितमानस के इस आदर्श का पालन किया जाय तो कोई भी राष्ट्र अधिक बलवान होकर भी अपने पडौसी राष्ट्र की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं करेगा।

राजनयिक सम्बन्ध (Diplomatic Relations) अन्तर्राष्ट्रीयता के युग की देन है। रामचरितमानस में भी राजदूतों को विशेष अधिकार दिये गये हैं। राम ने हनुमान जी को अपने विशेष दूत के रूप में शांतिवार्ता के लिए लंका भेजा। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि हनुमान रावण के दरबार में प्रवेश करते समय प्रणाम करना नहीं भूलते :—

विनती करउँ जोरि कर रावन, सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥

लेकिन हनुमान की कठोर शब्दों में दी गई चेतावनी सुनकर रावण क्रुद्ध होता है तथा दंड देने की घोषणा करता है। राक्षस हनुमान को मारने के लिए दौडते हैं। उससमय रावण के मंत्रियों ने रावण की नीति का विरोध किया और कहा कि राजदूत का वध अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध है :—

नाइ सीस करि विनय बहूता, नीति विरोध न मारिअ दूता ॥

राम युद्ध अनिवार्य नहीं मानते। वे शांति-वार्ता से समस्या सुलझाना चाहते हैं। राम अंगद को रावण के दरबार में दूत बनाकर भेजते हुए उससे यह कहना नहीं भूलते कि वह उसी बातचीत तक अपने को सीमित

रखे जिस-सेउद्देश्य पूर्ति हो और शत्रु का भी भला हो :—

बहुत बुझाइ तुम्हें का कहऊँ, परम चतुर मैं जानत अहऊँ।
काजु हमार तासु हित होई, रिपुसन करेहु बतकही सोई ।।

(लंकाकांड ४)

आज के युग में यह आदर्श पंचशील के सिद्धान्त अनाक्रमण की नीति से मिलता जुलता है जिसके अनुसार कोई भी देश अपनी गम्भीर से गम्भीर समस्या को सुलझाने के लिए शक्ति का प्रयोग नहीं करे और आपस के सभी झगड़ों को यत्नपूर्वक परस्पर वार्तालाप अथवा मध्यस्थ द्वारा निपटाया जाय। निस्सन्देह राम की सद्भावनापूर्ण नीति आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ से पृथक् नहीं प्रतीत होती। चीन तथा भारत के प्रधान मंत्री की सन् १९५४ की संयुक्त विज्ञप्ति तथा जेनेवा सम्मेलन का निष्कर्ष ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ हैं जिनका आदर्श ४०० वर्ष पूर्व रामचरितमानस में अंकित हुआ है।

रावण की नीति आक्रमक की है। उसने ही मारीचि को गुप्तचर के रूप में भेजा था। लंका के गुप्तचर प्राय: ऋषियों के यज्ञों में विघ्न डालने के लिए घुसपैठ (इन्फिलट्रेशन) करते रहते थे। यह अन्तर्राष्ट्रीय नीति के विरुद्ध रूप है। रावण ने सीता का अपहरण करके इसी नीति का उल्लंघन किया अतः दोषी रावण है। इसीलिए राम ने अंगद द्वारा रावण को अल्टीमेटम दिया कि यदि वह सीता जी को नहीं लौटाता तो उसे युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए। राम मानवता की रक्षा और लोकहित के लिए रावण से युद्ध करते हैं।

रामचरितमानस के अनुसार अनेक स्वतंत्र राज्य थे जैसे कैकय, अवध, मिथिला, किष्किन्धा और लंका आदि। अयोध्या के नरेशों की नीति सदैव पड़ौसी राज्य की स्वतंत्रता का समर्थन करती रही है। सांस्कृतिक रूप से सुदृढ़ सम्बन्ध बनाने के लिए दशरथ ने कैकय की राजकुमारी से विवाह किया। इसी प्रकार स्वयंवर द्वारा सीता के साथ विवाह करके राम ने मिथिला राज्य के साथ स्थायी घनिष्ट सम्बन्ध बनाया रामचरितमानस में इन राज्यों के अच्छे सम्बन्धसूत्र है। ऐसे डिप्लोमेटिक सम्बन्ध इतिहास में भरे पड़े हैं। सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त मौर्य का सम्बन्ध सभी जानते हैं। इसीप्रकार फ्रांस और इंगलैण्ड तथा कश्मीर और नेपाल के बीच आधुनिक युग में मधुर सम्बन्ध स्थापित किये गये हैं।

तुलसी के राम विभीषण को राजा बनाकर लंका राज्य और शेष राज्यों के बीच सहअस्तित्व (Co-existence) की नीति को पुष्ट करते हैं। यदि रामचरितमानस के इस आदर्श से प्रेरित होकर आज प्रत्येक राष्ट्र छोटे बड़े का भेद त्याग दे और परस्पर सहयोग द्वारा एक वृहद् परिवार की कल्पना लेकर चले तो आज के वातावरण की कटुता समाप्त हो जाय।

अन्तर्राष्ट्रीयता के युग में कुछ देशों में संस्कृति—भेद की समस्या बड़ी गम्भीर है। आज भी रंग और जाति के आधार पर मनुष्य से व्यवहार-भेद किया जाता है। ऐसे देशों में आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, संयुक्त राज्य, अमेरिका आदि को लिया जाता है। लेकिन रामचरितमानस में यूनेस्को के १९५० के अधिवेशन के निर्णय का व्यावहारिक रूप मिलता है। राम देश, जाति, धर्म और रंग भेद से ऊपर उठकर केवट, निषाद, शबरी, भील कोल, बंदर, भालू और राक्षस सभी को हृदय से लगाते हैं। समानता के आदर्श और परस्पर सहयोग द्वारा लाभ की प्राप्ति रामचरितमानस का कथ्य है। इन्हीं रूपों को देखकर हम कह सकते हैं कि तुलसी का दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय भावना के अग्रज रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

देश के निर्माण में रामचरितमानस का योगदान

डा० निज़ाम उद्दीन

खुदा ने आजतक उस क़ौम की हालत नहीं बदली,
न हो जिसको ख्याल आप अपनी हालत के बदलने का ।। इक़बाल

रामचरितमानस कालजयी कवि की कालजयी रचना है। हिन्दी के मूर्धन्य कवि संतशिरोमणि तुलसीदास की यह मूर्धन्य रचना करोडों लोगों के हृदय का हार है।-घर घर इसका पूर्ण निष्ठा एवं श्रद्धा-भक्ति से पाठ किया जाता है। इस प्रकार इसका आध्यात्मिक महत्व 'बाइबिल' तथा 'कुरान' के समान ही है। अतः ऐसे महान ग्रन्थ को किसी उत्सव या समारोह की बैसाखी पर खड़ा होने की जरूरत नहीं, वरन् देश की वर्तमान नैतिक पतितावस्था को देखकर यह कहना अधिक समीचीन है कि देश को—हम सबको 'मानस' की बैसाखी के द्वारा खड़ा होने और चलने की आवश्यकता है। साहित्यकार की जयंती सदा सृजनशील और प्रेरणादायक होती है, अतः उसके कालजयी ग्रन्थ की जयंती भी निःसंदेह हमें सृजन की, निर्माण की नूतन प्रेरणा प्रदान करेगी। तुलसीदास राष्ट्रकवि थे और उनका यह ग्रन्थ 'राष्ट्र-ग्रन्थ' है। राष्ट्रकवि देश की संस्कृति का आख्याता, रक्षक और प्रचारक होता है, तुलसीदास ने भी 'मानस' द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रचार और प्रसार किया।

हम प्रत्येक वर्ष दशहरा-पर्व पर रावण को जलाते हैं, अनेक स्थानों पर सम्पूर्ण 'रामायण' को लोकनाटक या रामलीला के रूप में सोल्लास अभिनीत करते हैं। ऐसा करके हम रावणत्व का संहार करते हैं, रामत्व की रक्षा करते हैं। मुसलमान मुहर्रम के द्वारा भी तो यही करते हैं वह 'शर' और 'ख़ैर की लड़ाई है, उसी से 'ख़ैर' की जीत, धर्म की जीत, हक़ व इन्साफ़ की जीत होती है:—

क़त्ले हुसैन असल में मर्गे यज़ीद है।
इस्लाम ज़िंदा होता है हर कर्बला के बाद ।।

इसी प्रकार रामलीला के बाद—रावण को जलाने पर धर्म और संस्कृति की रक्षा होती है। रावण सिम्बल है असत्य का, हिंसा का, अहंकार का, अत्याचार का, दमन का—वह राक्षसी वृत्ति की प्रतिमा है। राम प्रतीक है सत्य का, अहिंसा का, प्रेम का, मैत्री का, समानता का। आज देश में जो आसुरी वृतियां तथा शक्तियां विद्यमान हैं उन्हें नष्ट करने की सद्प्रेरणा हमें 'मानस' से ही प्राप्त होती है।

'मानस' जनवादिता, समन्वयवादिता, कर्मप्रधानता और चरित्रवादिता का ग्रन्थ है और यदि हम इन चारों बातों पर व्यापक और तर्कस्पर्शी दृष्टि डालें तो देश के निर्माण में इस ग्रन्थ से अत्यधिक सहायता मिलसकती है। तुलसीदास समन्वयवादी थे, समानता के हामी थे। उन्होंने धर्म, समाज, साहित्य तीनों क्षेत्रों में समन्वय की निर्मल, शीतल धाराएँ प्रवाहित कीं। धर्म में वैष्णव-शैव, निर्गुण-सगुण, एकेश्वरवाद-बहुदेववाद का समीकरण किया, समाज में शूद्र-ब्राह्मण, चाण्डाल-पुरोहित सभी को समानता प्रदान की। शबरी भीलिनी के बेर खाने वाले राम केवट को, निषाद को सस्नेह गले लगाते हैं। इसी प्रकार साहित्य में भी उन्होंने समन्वय की भावना से काम लेकर तत्कालीन विभिन्न काव्य-शैलियों को अपनाया और सबसे बड़ी बात यह कि उन्होंने 'मानस' की रचना लोकभाषा--जन-जन की भाषा में की। यदि वह चाहते तो संस्कृत में भी 'मानस' लिख सकते थे, लेकिन संस्कृत में लिखकर वह इस महान ग्रन्थ को केवल धर्म के ठेकेदारों की 'तिजोरी' में बन्द करा देते फिर जनसाधारण के हाथ उसका स्पर्श तक नहीं कर सकते थे। आज हमें भी अपने देश की क्षत्रीय भाषाओं को समुन्नत बनाना चाहिए और जैसा तुलसीदास ने किया, कि अवधी में संस्कृत, अरबी, फारसी के शब्दों का अभिनिवेश किया वैसा हम भी करसकते हैं—प्रान्तीय भाषाओं की प्रचुर-सुन्दर, शब्द-सम्पदा को लेकर उससे हिन्दी का भण्डार विकसित कर सकते हैं। जैसे कश्मीरी भाषा के 'पम्पोश', 'व्याव', 'संगरमाल' आदि शब्दों में जो भावसौंदर्य है वह हिन्दी शब्दों में कहां! इन जैसे अनेक शब्द अन्य प्रान्तीय भाषाओं से ग्रहण किये जासकते हैं।

'मानस' में धर्म एवं समाज का जो सम्यक् समन्वय तुलसी ने प्रदर्शित किया उससे हमारी धर्मनिर्पेक्षता की जड़ें अधिक मज़बूत होंगी। 'मानस' में कवि ने 'राम-राज्य' का वर्णन करते हुए कहा है :—

बयरु न कर काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई ॥

वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय शोक न रोग।।

आज चारों ओर 'गरीबी हटाओ' का समाजवाद का नारा सुनाई देता है, लेकिन रामराज्य में न कोई गरीब है, न रोगी, न भूखा, न प्यासा—

नहिं दरिद्र कोई दुखी न दीना, नहिं कोई अबुध न लच्छन हीना।
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी, नर अरु नारी चतुर सब गुनी।।

राम के लोकतंत्री राज्य में सबके लिए सभी वस्तुएँ सुलभ हैं; न कहीं चोर बाज़ारी, न मिलावट का धंधा, न तस्करी, न होर्डिंग, न परिग्रह— एक अनोखे प्रकार का राष्ट्रीयकरण था वहां। आज देश में भी कुछेक वस्तुओं का राष्ट्रीयकरण किया गया है लेकिन देखने में यह आया है कि वे वस्तुएं और अधिक महंगी होगई हैं, बाज़ार से खाद्यपदार्थ तक गायब मिलते हैं। तुलसी ने रामराज्य में मानवीय गुणों का संग्रह दिखाया, जबकि आजकी राज्य-व्यवस्था में कहीं अर्थसंग्रह है, कहीं वस्तु-परिग्रह है, कहीं पद-प्राप्ति की ऐसी भागदौड़ मची है कि एक दूसरे की टांग पकड़कर खींच रहा है और अपने आपको आगे निकालना चाहता है इसीलिए तो हिंसा, अत्याचार, अशांति और भ्रष्टाचार फैला हुआ है।

भारत की जीवन-दृष्टि भोगवादी नहीं रही, त्यागवादी रही है। यहां उन्हीं महापुरुषों को पूज्य माना गया जो त्यागी, उत्सर्गी थे। 'मानस' भी त्याग का संदेश देने वाला ग्रन्थ है, इसके सभी पात्र त्यागी हैं—राम, सीता, लक्ष्मण सभी ने तो वैभवपूर्ण जीवन का परित्याग कर कंटकाकीर्ण मार्ग को, वनजन्य दुखों-अभावों से पूर्ण जीवन को अंगीकार किया। भरत ने राजा होकर भी राम के लिए त्यागीवत् जीवन बिताया। आज यदि हमारे कर्णधार उसी प्रकार त्यागपूर्ण जीवन का आदर्श अंगीकार करें तो देश की अनेक समस्याएँ स्वतः नष्ट हो सकती हैं। आजकी नई पीढ़ी में जो अशांति, आक्रोश और संघर्ष की भावना पाई जाती है वह इसलिए कि पुराने लोग एक तो कुर्सी और गद्दी से चिपके रहना चाहते हैं, दूसरे वे नौजवानों की भावनाओं का समादर नहीं करते। राजा दशरथ कितने दूरंदेश थे कि उन्होंने स्वेच्छा से राम को राज्याभिषेक करने की घोषणा की। लक्ष्मण का चरित्र युवा पीढ़ी के आक्रोश एव आवेश का प्रतीक है। उन्होंने परशुराम की खूब खबर ली। परशुराम में अहंकार था और वह युवापीढ़ी

की भावनाओं को नहीं समझसके। इसीकारण रावण की अहंकारपूर्ण दृष्टि प्रहस्त की भावनाओं को नहीं देखसकी। अतः प्रहस्त अपने पिता रावण का, लक्ष्मण परशुराम का अपमान करते हैं। 'मानस' के द्वारा नयी पीढ़ी की भावनाओं को समादर से देखा गया है। आज हमें नवयुवकों की भावनाओं का समादर कर उन्हें तोड़फोड़ की प्रकृति से दूर रखना चाहिए तभी वे देश के निर्माण में सहायक हो सकते हैं। सबसे बड़ी बात है दृष्टिकोण बदलने की। जब तक स्वयं नहीं बदलेंगे, उन्नत होने का प्रयत्न नहीं करेंगे, कर्मशील न बनेंगे, संघर्षों से न जूझेंगे (जैसा राम जूझते रहे) तबतक न अपना, न देश का सुधार हो सकेगा। 'मानस' कर्मप्रधान ग्रन्थ है। यह हमें 'कर्मयोग' का संदेश देकर समाज-सेवा, देश-सेवा के बल पर राष्ट्रचरित निर्माण करने की प्रेरणा देता है।

तुलसीवन्दना

रचयिता--बद्रीनाथ कल्ला

वन्दे सन्तं तुलसीदासं,
अजरं, अमरं, विबुधवरेण्यं,
भारतमातुर्वरदंपुत्रं
वन्दे सन्तं०।

कविवरवन्द्यं,
जनगणपूज्यं,
भारतमुकुटं वन्दे, वन्दे सन्तं०॥

युगस्रष्टारं,
युगदृष्टारं,
युगचालकं वन्दे, वन्दे सन्तं०॥

प्रतिभाशीलं,
आदर्शरूपं,
राष्ट्रकविं तं वन्दे, वन्दे सन्तं०॥

भाषापण्डितं,
कलाप्रवीणं,
शास्त्रविश्रुतं वन्दे, वन्दे सन्तं०॥

मानसकारं,
ज्ञानस्वरूपं,
रामस्वरूपं वन्दे, वन्दे सन्तं०॥

मानस-संवेदन

प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प

रामचरितमानस भारतीय साहित्य की, और इसी नाते विश्व-साहित्य की अमर थाती है; इसलिए नहीं, कि इसमें किसी पुराण-पंथी परम्परा के सनातन होने का राग अलापा गया है या किसी धर्म-सम्प्रदाय-विशेष की सीमाओं का संरक्षण अभीष्ट है। यह थाती अमर इसलिए है कि समाज के घेरे में सीमित रहते हुए भी मानव-कल्याण के उद्भावन की कई मनोरम रागिणियां इस महाकाव्य में झनझना उठी हैं, जो विश्व-जनीन हैं, जो किसी एक युग की होते हुए भी युग-युग की जान पड़ती हैं।

सच तो यह है कि तुलसीदास धर्मध्वजी सुधारक थे न कलासक्त कवि। दोनों के विरुद्ध उन्होंने अपनी आवाज़ उठाई है। वे मूलतः एक संवेदनशील भक्त थे। भक्ति के अजस्र उत्स की अतल गहराई से उमड़ कर ही उनके उद्‌गार कविता बन गये और रामकथा की हिलोरों से आन्दोलित होकर उनका संवेदन ही 'मानस' बन गया रामचरितमानस।

स्पष्ट है कि रामकथा सैंकड़ों ही नहीं, हज़ारों बरस से भारतीय संस्कृति के अन्तस्तल में प्रवाहित होती आई है। इसके अनथक प्रवाह में बहकर जहां भारत की कई सामाजिक स्थापनाएँ शालिग्राम बनकर हम तक आ पहुँची हैं, वहां रीति कुरीति की कई लोक-परम्पराओं और युगभ्रष्ट मान्यताओं की तलछट भी हमारे समाज की तह में जम गई है। रामचरितमानस में इन दोनों सामाजिक प्रक्रियाओं के घात-प्रतिघात की झलक मिलती है। तुलसीदास अपने युग की परिधि से बाहर निकलते भी कैसे? हां, परिधि के अन्दर रहते हुए भी ऊपर उठने की उन्होंने भरसक कोशिश की। वे कोई क्रांतिकारी तो थे नहीं जो परिस्थितियों से जूझ कर समाज में आमूलचूल परिवर्तन की बात करते। तथापि मुग़ल भारत के संकीर्ण वातावरण में वर्णाश्रम की परम्परागत चौहद्दी को स्वीकारते हुए भी उन्होंने मानव-समाज को कुछ जीवनोत्कर्षक आदर्श सुझाये और रामभक्ति के विश्वजनीन विस्तार में एक अपूर्व सामञ्जस्य की उद्भावना की। शुक्ल जी ने

'लोकसंग्रह' के इसी आदर्श को तुलसी की भक्ति का अभिन्न अंग माना है; और 'लोकसंग्रह' के आदर्श की प्रासंगिकता को समझने के लिए उस युग को दृष्टि में रखना आवश्यक है जिसमें तुलसी ने आंख खोली और सांस ली।

इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में इस युग को 'मुग़लिया दौर' के नाम से पुकारा गया है। अपनी 'विनयपत्रिका' और 'कवितावली' जैसी मुक्तक रचनाओं में तुलसी ने कटु अनुभव के कई ज़हर-भरे घूंट उंडेल दिये हैं जिनको चखने से टीस उठती है। यह टीस मात्र व्यक्ति की नहीं, पूरे समाज की टीस है, क्योंकि तुलसी ने अपने युग को दूर से नहीं देखा था, बहुत निकट से छू लिया था। छुआ ही नहीं, भुगत भी लिया था :—

"हा हा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार परी न छार मुंह बायो।
...असन बसन बिन बावरो जहँ तहँ उठि धायो।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलन आगे खिनु पेट खलायो।।"
या (विनय पत्रिका)

"...बारे ते ललात, बिललात द्वारद्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि ही चनन को।।" (कवितावली)

इन-ऐसे कई आत्म-निर्देशों का यही तो साक्ष्य है। और इसी परिप्रक्ष्य में तुलसी ने राक्षसों की यह पहचान बतायी है :—

"बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा।
मानहिं मातपिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।
जिन्हके यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी।।"
(बालकाण्ड)

इसमें संदेह नहीं कि सामाजिक स्तर पर कई बातों में, विशेषकर वर्णाश्रम के परम्परागत मोह, स्त्रीजाति के प्रति सशंक धारणा और भाग्यवाद की मूक स्वीकृति के संदर्भ में, तुलसीदास की भावना पुरातनी या पिछड़ी सी जान पड़ती है। नारी जाति के प्रति यह स्थाप्ना कि :—

"सांचु कहइ कवि नारि-सुभाऊ। सब विधि अगम अगाध दुराऊ।।
निज प्रतिबिम्ब मुकुर गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई।।"

क्या 'नर' के बारे में भी इन्हीं शब्दों में ध्वनित नहीं की जा सकती? पूछा जा सकता है कि भला सीता, कौशल्या और मन्दोदरी की उपेक्षा करके मन्थरा, कैकेयी और शूर्पनखा को ही नारी-जाति का मानदंड

क्यों ठहराया जाय ? ऐसे ही पतनोन्मुखता के बावजूद ब्राह्मणजाति की सर्वोत्कृष्टता का बारबार उद्घोष दुराग्रह की सीमा को छूता नजर आता है। स्पष्ट है कि तुलसीदास युगसंस्कार से बाध्य थे, पर बाध्य होते हुए भी वे इस बात पर ज़ोर देना चाहते थे कि रामपक्ष से सम्बद्ध होने में ही मानव का कल्याण है, रावण-पक्ष के इशारों पर नाचने में नहीं।

इसी दृष्टि से उन्होंने उत्तर-काण्ड में युग-विडम्बनाओं का विद्रूप चित्रित किया है :—

"झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहि मधुर वचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।
पर द्रोही परदाररत पर धन पर अपवाद।
ते नर पांवर पापमय देह धरे मनुजाद।।
लोभइ ओढ़न लोभइ आसन। सिस्नोदर पर यमपुर त्रास न।।
काहू की जौं सुनहि बड़ाई। स्वासु लेहि जनु जूड़ी आई।।
जब काहू कै देखहि बिपती। सुखी भए मनहुं जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।।"

'कलिधर्म' का बखान करते हुए तो तुलसी ने अस्ल में अपने ही युग का रोना रोया है और क्या यह रोना बहुत कुछ हमारे युग का रोना भी नहीं है ?

"मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहहि सब कोई।।
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।।
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोह गुनवंत बखाना।।"

ऐसे युगसंकट से छुटकारा पाने का जो उपाय तुलसी ने 'एक अधार राम गुन गाना' सुझाया है वह भले ही आज हमें उथला या थोथा नज़र आय; पर तुलसी की दृष्टि से देखिए तो यह 'राम गुन गाना' मात्र रामनाम की रट लगाना नहीं, 'रामचरित' को अपना कर अपने जीवन में उतारना है, समोना है, झलकाना है; ताकि मानस का पाठक भी 'सिया-राममय सब जग जानी' कहने का अधिकारी बन जाय और उस रामराज्य का भागी बने जिसमें :—

"सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लछनहीना।।

कबीर ने 'राम' की निर्गुणता का जो भजन किया था वह मनन और चिन्तन के स्तर पर महत्त्वपूर्ण तो था, पर सामाजिक आचरण और मानवीय व्यवहार की अपेक्षाओं को पूरा करने में उदासीन-सा लगता था। इन अपेक्षाओं को पूरा करने की सक्षमता हाड़चाम के किसी सामाजिक आदर्श में ही सम्भव है। तुलसी ने मानव सम्बन्धों में सत्य और शिव के सामञ्जस्य की मनोरम परिकल्पना करके एक आदर्श पुरुषोत्तम के रूप में दिव्य शक्ति के अवतरण की युगानुकूल भूमिका बांधी। ऐसा लगता है कि कबीर-पंथियों को ही सामने रखकर तुलसी ने काक-भुसुंडि के मुँह से कहलवाया कि :—

"कहेउ न कछु करि जुगुति बिसेखी।
यह सब मैं निज नयनन्हि देखी।।" (उत्तरकांड)

कुछ भी हो, युगानुकूलता की परख और पकड़ संवेदन के विना सम्भव नहीं, क्योंकि युगबोध के साथ जबतक युग के दुःख-दर्द की तीव्र अनुभूति और उस दर्द को बांटने की निर्मोह आकुलता कवि के अन्तस्तल को आन्दोलित न करें तबतक युगानुकूलता को काव्य की धड़कन बनाना उसके बस की बात नहीं। तुलसी के अनुसार किसी राजे-रजवाडे की चापलूसी में लगी हुई तुकबंदी कितनी ही प्रभावपूर्ण क्यों न हो, कविता नहीं, क्योंकि :—

"कीन्हों प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछताना।।"

उनकी दृष्टि में तो सबका हित करने में ही किसी रचना की चरितार्थता है :—

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।"

अतः उन्हें यही समीचीन दिखाई दिया कि रामकथा को लोकभाषा में ही गाया जाय ताकि जनसाधारण भी उसका रस ले सकें।

इस प्रकार 'सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता' गिरा के माध्यम से सर्व-साधारण तक पहुँच पाने की तड़प तुलसी के संवेदन की एक युगांतरकारी विलक्षणता है। उनसे कई सौ वर्ष पहले स्वयम्भू (कवि) ने अपभ्रंश भाषा में जो रामायण रची थी वह भी दोहा-चौपाई में ही थी; पर भाषा की दृष्टि से वह इतनी व्यापक नहीं हो पाई थी जितनी रामचरितमानस, क्योंकि

उसमें काव्य रचने का आग्रह जितना प्रबल था, लोगों तक पहुँच पाने का उतावलापन उतना तीव्र नहीं था। रामकथा का आश्रय लेकर तुलसी का संवेदन ही तो मानस-संवेदन बन गया और उनका यही संवेदन जनमानस में भी हिलोरें लेने लगा। रामचरित के तानेबाने में आदर्शों के प्रतीकों को तुलसी ने कुछ इस तरह गूँथ लिया है कि आज भी पाठक को इसमें अपने ही आसपास का प्रतिबिम्ब नज़र आता है। हर पाठक राम को केन्द्रीय आदर्श मानकर उससे किसी न किसी रूप में अपना रागात्मक सम्बन्ध जोड़ ही लेता है, और अपने आपको रामपरिवार का ही सदस्य समझने की प्रेरणा पाता है। सदस्यता का रूप तो उसकी अपनी बौद्धिक सजगता और सांस्कृतिक चेतना पर ही निर्भर करेगा, पर रामपरिवार से बेगाना रहना किसी भी सहृदय पाठक के लिए गर्व की बात नहीं कहला सकती। तुलसी ही के शब्दों में :—

"कवित रसिक न रामपद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥"

रामचरितमानस की इस विलक्षणता का रहस्य निःसन्देह तुलसी की कवि-प्रतिभा में है और तुलसी की कवि-प्रतिभा का मूल स्रोत है वह संवेदन जिसने मानस के मार्मिक स्थलों को इतना प्रभावशाली बनाया है। नहीं तो तुलसी के निकट :—

"भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ। रामनाम बिन सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भांति सँवारी। सोह न वसन बिना वर नारी॥"

(बालकाण्ड)

रचना की दृष्टि से तुलसी शब्द और अर्थ को एक-दूसरे में सम्पृक्त मानते हैं, वैसे ही जैसे पानी और (पानी की) लहर एक दूसरे से अभिन्न हैं :—

"गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न॥"

मानस की प्रत्येक हिलोर में रामचरित के रस का उल्लास ही तो है। 'जीभ की देहरी' पर तुलसी ने रामनाम के 'मणिदीप' को स्थापित किया तो उनके अंदर-बाहर उजाला ही उजाला हो गया और उसी उजाले से 'मानस' आलोकित हो उठा। जभी तो काव्य से अधिक भक्ति पर उनका ज़ोर रहा, जिसके लिए परम्परागत पौराणिक श्रद्धा अनिवार्य ठहराई गई। नहीं तो रामकथा के कई पौराणिक प्रसंग आजकल अटपटे लगें और

रामनाम की महिमा का बार-बार उद्घोषण उकताहट पैदा करे। पर यह तुलसी के संवेदन का ही चमत्कार है कि खटकनेवाली विवशताओं से आक्रांत रह कर भी उन्होंने रामकथा के मार्मिक मोड़ों को बड़ी चतुराई से निभाया। उन्होंने अपनी 'भनिति' में एक मनोरम नाटकीयता पैदा की है जिसके बलबूते पर पाठक का हृदय उत्तरोत्तर उत्सुक हो उठता है।

किशोर हृदय से फूटनेवाला प्रेमांकुर हो या विरह-व्यथा में घुटा-घुटा अनुक्रोश, स्वयंवरसभा में जनक की निराश घोषणा हो या राक्षससभा में रावण की उद्धत डींग, परशुराम से लक्ष्मण का वाग्युद्ध हो या रावण से अंगद की मुठबेड़, मंथरा और कैकेयी की खुसर-फुसर हो या वन जाने के लिए सीता का सजीव आग्रह, पंचवटी में निष्कासित जोडे का प्रेमालाप हो या अशोकवाटिका में तड़पती सीता का विरहोद्गार, शूर्पनखा के साथ रामलक्ष्मण का परिहास हो या हनुमान की पूंछ में आग लगाने का आयोजन, वाणर-सेना का अभियान हो या राक्षसचमू का प्रतिरोध, ग्रामबधुओं की भोली जिज्ञासा हो या निषादों की निःस्वार्थ सहानुभूति - सभी में तुलसी का संवेदन बोल उठा है और गहराई में जाकर कई एक अविस्मरणीय चित्र उभारने में कृतकृत्य हुआ है। उदाहरण के लिए :—

१. सीतास्वयम्वर के परिप्रेक्ष्य में :—

(क) स्याम गौर किमि करौं बखाना। गिरा अनयन नयन बिनु काना ।।
कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि ।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व-बिजय कहुँ कीन्ही ।।
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ।।

(ख) जनक :—

अब जनि कोउ भाखै भट मानी। बीर-बिहीन मही मैं जानी ।।
तजहु आस निज निज गृह जाहु। लिखा न बिधि बैदेही बिबाहु ।।

... ...

(ग) माखे लषनु कुटिल भई भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें ।।

(घ) सीता :—

सखि सब कौतुक देखनि हारे। जेउ कहावत हितू हमारे ।।
रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा ।।
सो धनु राजकुअंर कर देही। बाल मराल कि मंदर लेही ।।

(ङ) राम की प्रतिक्रिया :—

देखी बिपुल ब्रिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही ।।
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करइ का सुधा तडागा ।।
का बरषा सब्र कृषी सुखाने। समय चुकें पुनि का पछताने ।
अ्रस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी ।।

(च) जयमाला लिये सीता की मनोदशा :—

तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू ।
जाय समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअ्रंरि चित्र अ्रवरेखी ।।

२. परशुराम–लक्ष्मण संवाद से :—

कहेउ लषन सुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा ।।
मात पितहि उरिन भये नीके। गुर रिनु रहा सोचु बड़ु जीके ।।
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गये ब्याज बड़ बाढ़ा ।।
अ्रब आनिअ्र व्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली ।।
... ...
मैं तुम्हार अ्रनुचर मुनिराया। परिहरि कोपु करिअ्र अ्रब दाया ।।
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिइ होइहिं पाय पिराने ।।

३. मन्थरा-कैकेयी संवाद से :—

(क) मन्थरा (कैकेयी से) :—

कोउ नृपु होउ हमहिं का हानी। चेरि छांड़ि अ्रब होब कि रानी ।।
... ...
रेख खेंचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कहुँ माखी ।।
जौ सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई ।।

४. बनगमन के अ्रवसर पर :—

(क) सीता (राम से) :—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहुँ भोगू ।।

(ख) दशरथ की दुविधा :—

राखि न सकइ न कहि सकि जाहू। दुइँ भांति उर दारुन दाहू ।।

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। विधि गति बाम सदा सब काहू ।।
धरम सनेह उभयँ मति घेरी। यह गति साँप-छुछुंदरि केरी ।।

५. लक्ष्मण का परिहास (शूर्पनखा से)

सुंदरि सुन मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा ।।
प्रभु समरथ कोसलपुर राजा जो कछु करहिं उनहि सब छाजा ।।

६. रामसंदेश विरहाकुल सीता को (अशोक वाटिका में) :—

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ।।
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरसु एतनेहि माहीं ।।

७. लंकाकाण्ड में :—

(क) अंगद (रावण से) :—

जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनिहि पर नारी ।।

(ख) मंदोदरी (रावण से) :—

रामानुज लघु रेख खचाई। ओउ नहिं नाधेहु असि मनुसाई ।।

अस्तु, यह और इस प्रकार के अनेक चित्र मानस-संवेदन से ओतप्रोत हैं और तुलसी की भनिति को बदले हुए युग में भी सार्थक बनाये रखने में सहायक हुए हैं। मानस-चतुःशती के ऐतिहासिक पर्व पर इस संवेदन को भावुकता की बाढ़ में बहा ले जानेवाली श्रद्धांजलियों से सतर्क रहना जरूरी है।

रामचरितमानस की आधुनिक युग में उपादेयता

प्रो० काशीनाथ दर

गोस्वामी जी का व्यक्तित्व किसी परिचय की अपेक्षा नहीं रखता; उनसे रचित 'मानस' भारतीय जनमानस का प्रेरणा-स्रोत है; वास्तव में 'मानस' को एक साम्प्रदायिक धर्म-पुस्तक समझना भ्रमजनक होगा; यह तो भारतीय जीवन-दर्शन का पर्याय है जिसमें परम्परागत जनविश्वासों और आस्थाओं को इस भक्तशिरोमणि ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से एक नई दिशा ही न दी, अपितु नई वाणी भी प्रदान की; जनसाधारण की धड़कनों को एक सजग कलाकार की तरह तुलसी ने उनकी ही भाषा और मुहावरे में बड़ी निपुणता से संजोकर इन्हें अधिक प्राणवान तथा सार्थक बनाया, जभी तो उनकी लोकप्रियता आजतक बराबर बनी रही है।

गोस्वामी जी भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के सतर्क प्रहरी थे; समाज के प्रति उन्होंने कभी भी आंखें नहीं मींचीं; कल्पना के आकाश में झूलते हुए भी उनके पैर बराबर धरती पर टिके रहे, जीवन के प्रति नकारात्मकता न अपनाकर तुलसी ने इसे जीवन्त सकारात्मकता से विभूषित किया; उन्होंने हरैली के करुण-मधुर गीत न गाकर, समाज को विजय के मील-पत्थर गिनने की ओर प्ररित किया; 'क्या खोया' इसका मातम करने के बदले इन्होंने एक सच्चे लोकनायक की तरह 'क्या पाया' की ओर जनता का मन मोड़ लिया; इसप्रकार उन्होंने लुढ़कते हुए जनविश्वासों के सामने 'राम' के नाम से एक अनुकरणीय आदर्श की स्थापना की, जिससे भारतीयता धक्का लगने से साफ बच गई; निराशा और किंकर्तव्यविमूढ़ता के धुँधल के उनके सन्देश के प्रखर तेज के आगे परास्त हो गये और सहमी हुई भारतीयता फिर से निश्शंक भाव से अपनी शाश्वत सनातन डगर पर पैर धरने को उद्यत हुई; 'मानस' की संजीवनी से मृतप्राय-भारतीयता को प्राणदान प्राप्त हुआ।

गोस्वामी जी का कवि-हृदय अपने उबाल को समाज तक पहुँचाने के लिये हर समय लालायित था; वे जनता से कट कर रहना नहीं चाहते

थे; व्यक्ति और समष्टि का मधुर-संगम उनकी कल्पना का प्रथम सोपान है; जिन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में उन्होंने होश संभाला, वे किसी भी अर्थ में उनके अनुकूल नहीं कही जा सकती हैं, कोई दुर्बल व्यक्ति इनके आगे हथियार डालकर इन से समझौता करके अपनी कविता के इन्द्रजाल में अपने आप को खो बैठता, जीवन से पलायन करके इसकी प्रत्यक्ष कटुता को उधार-मांगी मिठास से भिगो देता, परन्तु तुलसी ने इस विभीषिका से हार न मानी, और समाज में भी इन विषम परिस्थितियों से जूझने का शंखनाद फूंका; भारतीय संस्कृति के मूल-मन्त्र 'समन्वय' का हाथ थामकर इन्होंने समाज को विशृंखल होने से बचाया; मानव के 'अहं' को सुरक्षित किया; इस तरह एक सिद्धहस्त वैद्य की तरह जनता के रिसते हुए घावों पर अपूर्व मलहम का लेप करके इसे फिर से स्वस्थ बनाया, उनके जीवन में सोद्देश्यता की पैवन्द लगा दी।

'रामचरितमानस' के आरम्भ में ही गोस्वामी जी अपनी अभिलाषा का वर्णन यूं करते हैं:—

"ज्यों बालक कहे तोतरी बाता। सुनिहहिं मुदितमन पितु अरु माता।।"

और इसके साथ ही उन्हें इस बात का भी भरोसा है:—

"करण चहौं रघुपति गुणगाहा। लघुमति मोरि चरित अवगाहा।।"

ऐसे कठिन उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये उनमें सामर्थ्य नहीं:—

"सूझ न एको अँग उपाऊ। मम मति रंक मनोरथ राऊ।"

इतना होते हुये भी उन्हें पूरा विश्वास है कि:—

"भणित विचित्र सुकविकृत जोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ।
विधुवदनी सब भान्ति संवारी। सोह न वसन बिना वर नारी।।"

इसप्रकार राम-नाम के आदर्श तक पहुँचने के लिये वे जनता को बराबर सचेत करते रहे. यथार्थ को मनोनुकूल मोड़ने के लिये आदर्श की चुम्बकशक्ति जितनी अभीष्ट है, उतनी ही उपादेयभी। ऐसे धर्मसंकट में जब जनता के सामने जीवन का कोई स्पष्ट उद्देश्य न था, तुलसी ने राम-रूपी प्रकाश-स्तम्भ की स्थापना करके लोगों में फिर से जीने की चाह पैदा कर दी, और उनके मनके अन्धरे भागने पर विवश हुए; मनके अन्धेरे बन्द कमरों की घुटन से मुक्त करके गोस्वामी ने जनता के हृदय पर से ग्लानि की परत उठाई और खिड़कियां खुलने से जीवनदायिनी बयार उनमें से

अन्दर बहने लगी ; वर्तमान के प्रति रोष को तुलसी ने अपनी पैनी कल्पना से जीवन के प्रति तोष में बदल दिया, इस तरह जीवन सार्थक और सोद्देश्य बन पाया।

सम्भवत: आज के युग में मानव उसी तरह वर्तमान के प्रति अपनी खीज नाना-रूपों द्वारा व्यक्त कर रहा है; हृदय की अपेक्षा वह मस्तिष्क से अधिक काम ले रहा है, भावना के स्थान पर वह तर्क में अधिक विश्वास रखता है; वर्षों से छाती में पाले गये सपने उसकी आंखों के ही सामने धराशायी होते जा रहे हैं; अतीत से कटकर वह वर्तमान में रहना चाहता है, भविष्य के प्रति उसमें आग्रह नहीं, वास्तव में अतीत, वर्तमान और भविष्य एक दूसरे के पूरक हैं, एक न टूटने वाले क्रम में जुडे हुए हैं, अतीत का ही संशोधित संस्करण वर्तमान है और भविष्य इसकी भावी रूप-रेखा का अग्रदूत है; जीवन को आजका मानव आंशिक रूप में बिताना चाहता है, जीवन कोई स्थूल सामग्री नहीं जिसे एक दूसरे से अलग करके भिन्न आकार और प्रकार के डिब्बों में बन्द करके ऊपर से कोई मनचाही लेबिल चिपकाई जाये, यह तो एक अविच्छिन्न प्रवाह है जो अबाध वेग से गतिशील होता रहता है, इस तथ्य को किसी भी कीमत पर झुठलाया नहीं जा सकता; आजका मानव 'व्यक्ति' का समर्थक है, अपने लिये ही केवल जीना चाहता है, समष्टि के साथ वह कोई भी लगाव रखना नहीं चाहता; व्यक्तिवाद का यह मुखर स्वर भारतीयता के मूल-सिद्धान्त की उपेक्षा करता है; टूटी-फूटी 'चाल' के मकड़ी के जालों से लेकर इस प्रकार का दृष्टिकोण राजमहलों के फानूसों के साथ बराबर संलग्न है, जीवन की दौड़ में भौतिक मदान्धता ने नैतिकता को पछाड़ दिया है, चांदी के चमचमाते सिक्कों से मानव की व्यापक दृष्टि चुन्धिया सी गई है, जिस कारण वह अपनी परिधि से बाहर किसी अन्य को देख नहीं पाता, जभी तो आजकी पीढ़ी को 'भूखी पीढ़ी' की संज्ञा दी गई है; यह 'भूख' केवल भौतिक न होकर आध्यात्मिक भी है, किसी आकर्षक आदर्श के अभाव में इसकी प्रतिक्रिया बहुत ही घिनौना रूप धारण करती है; छात्रों में अनुशासनहीनता, श्रमजीवियों में असन्तोष, इत्यादि इसी रोग के लक्षण-मात्र हैं; आजका मानव दोहरे व्यक्तित्त्व से काम ले रहा है, दोराहे पर खड़ा होकर वह यह निर्णय नहीं कर पाता कि उसे दायां चलना है या बायां और इसी उधेड़बुन में वह अपना सन्तुलन खोकर समाज और सरकार के लिये एक समस्या बनता जा रहा है; विश्व के हर एक कोने से इसी असन्तोष के स्वर दिन प्रतिदिन मुखर होते जा रहे हैं; आजकी

मुखौटी सभ्यता ने तो मानव का वातावरण पूर्णरूप से विषाक्त बना दिया है। आजके मानव को हर ओर घास में रेंगते हुए साँप दिखाई दे रहे हैं, वह अपने आपको सुरक्षित समझ नहीं पा रहा है।

इसप्रकार के प्रतिकूल वातावरण में तुलसीदास जी का अमर-सन्देश जितना सार्थक सिद्ध हो सकता है, उतना और कोई उपाय नहीं हो सकता, फौज और पुलिस तो अस्थायी तौर से शान्ति पैदा कर सकते हैं, परन्तु वह कब्रिस्तान की शान्ति कहलायेगी; शान्ति मन की एक विशेष स्थिति है, अशान्त को सुख-चैन कहीं भी नहीं मिल सकता, अतः आजके मानव का दृष्टिकोण बदलाने की अतीव आवश्यकता है, यह मन का रोग है, दूषित मन से, विचार-शक्ति से केवल दोष ही उत्पन्न होंगे, अतः उनमें स्वस्थता लाने के लिये 'मानस' का दिव्य-सन्देश एक अमोघ साधन है।

राम-राज्य की परिकल्पना गोस्वामी जी के ही वचनों में सुनिये।—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहहिं व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं सुधर्म निरत श्रुति नीति।।
चारिउ चरण धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोई अबुध न लक्षण-हीना।।

'राम' के आदर्श तक पहुँचने के लिये भरत और लक्ष्मण जैसे भाई मिलने चाहें;

जेठ स्वामी सेवक लघुभाई। रघुकुल रीति सदा यह सुहाई।।

सीता जैसी कुलनारी का साथ पाकर राम का व्यक्तित्त्व परिपूर्णता को प्राप्त होता है, इसीलिये उसके खो जाने पर वह इस प्रकार रो उठता है :–

''हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी। तुम देखी सीता मृगनैनी।।

'बाली' के प्रश्न करने पर कि उसे श्रीराम ने क्यों इसप्रकार मारा, तुलसी का उत्तर इस प्रकार है :—

''अनुजवधू भगिनी सुतनारी। सुनु शठ ये कन्या सम चारी।
इन्हें कुदृष्टि विलोकै जोई। ताहि वधे कुछ पाप न होई।।

हनुमान और सुग्रीव जैसे सेवक पाकर ही राम की प्रतिष्ठा आकाश छूने लगी :—

"समदरशी मोहिं कह सब कोई। सेवक प्रिय अनन्य गति सोई।।"

इस तरह 'मानस' में विश्व के लिये मन की व्याधियों को दूर करने के लिये राम-बाण औषधि पग पग पर सुलभ है; आजके मानव में निहित 'विरोध' का समाधान 'मानस' में गूंथे गये मोतियों को जीवन में उतारने से ही सम्भव है।

'मानस' भारतीयता का ज्वलन्त प्रतीक है, भारत के दृष्टिकोण का सजीव प्रमाण भी; भारत के इस अमूल्य ज्ञान-भण्डार को व्यवहार में लाकर ही आज की झुलसी हुई मानवता त्राण पासकती है; भारतीयता तो वास्तव में मानवता का दूसरा नाम है; गोस्वामी जी ने लगभग चार सो वर्ष पहले इसी भारतीयता की अजस्र गंगा बहाई थी, जिसके पावन जल का स्वाद कभी भी बासी नहीं पड़ता। यह समय और स्थान के बन्धनों से निर्लिप्त है।

'तुलसी' एक जागरूक कवि के नाते युग-द्रष्टा और युग-स्रष्टा के दोहरे व्यक्तित्व को अपने में समोये हुये हैं, उनकी अमर वाणी ने जहाँ वर्तमान में नवीन सुधार का बीड़ा उठाया, वहां इसके साथ ही भविष्य की रूप-रेखा में भी अपनी 'जहां न पहुँचे रवि वहां पहुँचे कवि' वाली अचूक मेधा से मनचाहे रंग भर दिये और मानव को जीवन में राजहँस की तरह 'क्षीरनीर विवेक' पर चलने के लिये बाध्य किया।

भले ही आजके मानव ने चन्द्रलोक पर अपनी विजय के भण्डे फहराये हों, परमाणु को खंडश: विभक्त करके अपने पास अतुलित पाशविक बल इकट्ठा किया हो, परन्तु उसने अभीतक अपने आपको जीता नहीं है, जिस शुभ-घड़ी में वह अपने आपको पहचान पायेगा, वही उसकी सच्ची विजय कहलायेगी, इस लक्ष्य तक उसे 'मानस' ही बच्चे की तरह उँगली पकड़कर ले जाने में सहायक सिद्ध होगा; घुटनों के बल चलने वाला आजका मानव 'मानस' का संबल पाकर सच्चे अर्थों में प्रौढ़ बन जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आजके मानव की अर्थ-पिपासा शान्त होने का नाम ही नहीं लेती, अत: धन उसकी तृष्णा की आग पर घी का काम करता है, जभी तो गोस्वामी जी का मार्मिक प्रवचन आज भी उतना ही सत्य प्रतीत होता है जितना यह उस समय था:—

''जे जन्मे कलिकाल कराला। करतब बायस वेष मराला।
वंचक भक्त कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के ।।

परन्तु यह हमें स्वीकार करना होगा कि मानव को सम्मानपूर्वक जीवित रहने के लिये अनुकूल जलवायु जुटानी आवश्यक है; उसकी मूलभूत आवश्यकतायें पूरी की जानी चाहिये; स्वयं तुलसी ने इस आर्थिक विषमता की ओर इशारा करते हुये स्पष्ट शब्दों में कहा है :—

चरित राम के सगुण भवानी। तरकि न जाइँ बुद्धिबल बानी।
अस विचारि जो परम विरागी। रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी।।

मानव की इच्छायें अनगणित हैं; अभी तक कोई ऐसा व्यक्ति दृष्टि में नहीं आया है जिसको कुछ न चाहिये; परन्तु इस न बुझने वाली प्यास की तृप्ति त्याग और वैराग्य से शतशः सिद्ध हो सकती है, 'मानस' में मानव को 'कंचन का किंकर' होने के बदले इसका स्वामी बनने का अद्भुत मन्त्र दिया गया है; जीवन में कमल के पत्ते की तरह रहना ही मानव के लिये कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है; पानी में रहकर भी, इसकी उपज होकर भी कमल का पत्ता इससे अछूता रहता है; मानव में लेने की अपेक्षा जब देने की मानसिक शक्ति अधिक उजागर होगी, तो वह कभी भी अपने आपको अकिंचन अथवा शोषित नहीं समझेगा; विभीषण ने रावण की अतुलित धनराशि पाकर इसे बन्दरों और रीछों में बांट डाला; कछुए की चाल चलने से, अपने आप में सब कुछ समेटने से जीवन वांछनीय नहीं हो सकता; इसी उपदेश की आजकल संसार को अतीव आवश्यकता है।

अतः हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि तुलसी का मानस आजकल के मानव में जीवन के प्रति आस्था और विश्वास पैदा करने का सबल साधन है; इससे परिचित होकर वह अपने आपको थका-थका सा टूटा-टूटा सा अनुभव नहीं करेगा; उसमें नवीन स्फूर्ति का आजाना स्वाभाविक है और इसतरह आज की कराहती हुई मानवता रेशम के कीडें की तरह अपने ही तारों में सिमटी, बन्दी बनी हुई पर खोलकर नये क्षितिजों को छूने के लिये कटिबद्ध होगी क्योंकि गोस्वामी जी की यह चौपाई उसका हर समय मार्गदर्शन करती रहेगी :—

निजसंताप द्रवै नवनीता। परदु:ख द्रवहिं सुसंत पुनीता।।

हिन्दी रामकाव्य में तुलसी का स्थान

विजयमोहिनी कौल

सहस्रों वर्ष व्यापी वैष्णव रामकाव्य की जिस सुदीर्घ परम्परा में हिन्दी रामकाव्य का विकास हुआ है, उसकी पृष्ठभूमि में संस्कृत का विशाल वाङ्मय रहा है। हिन्दी रामकाव्य ने उस समृद्ध परम्परा से पोषण प्राप्त किया है, फिर भी वह अपनी पूर्ववर्ती परम्परा का पिष्टपेषण मात्र नहीं है। इसमें सर्वत्र सद्यः स्फूर्त चेतना के दर्शन होते हैं। परम्परा से प्राप्त सामग्री को उसने साधिकार ग्रहण किया है किन्तु वैयक्तिक-सामाजिक प्रभावों से अन्तर्व्याप्त जटिल रचना प्रक्रिया में ढ़लकर उसने नूतन रूप भी ग्रहण किया है। हिन्दी रामकथा क्षेत्र में 'मानस' 'रामचन्द्रिका' और 'साकेत' तीन विभिन्न युगों और प्रवृत्तियों की ऐसी अमूल्य कृतियां हैं जिनकी गणना रामकाव्य के कीर्तिस्तंभों में की जाती है। उक्त तीनों ग्रन्थ अपने में विशिष्ट और महिमा सम्पन्न तो हैं ही साथ ही मौलिकता और नवीनता को भी संजोये हुए हैं।

हिन्दी रामकाव्य में तुलसी के स्थान का जहां तक प्रश्न है वहां यह तथ्य स्वयं स्पष्ट है कि हिन्दीसाहित्य के श्रेष्ठतम कलाकार एवं परम-भक्त गोस्वामी तुलसीदास जी रामभक्ति परम्परा के विकास में एक महत्वपूर्ण शृंखला हैं जिन्होंने उस शृंखला को ही केवल बनाये नहीं रखा वरन् युग युगान्तर तक अपने 'रामायण' को भक्ति का उज्ज्वल संबल व आधार स्तम्भ भी बना दिया। हिन्दी रामकाव्य धारा में तुलसी ने जो अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है उसका कारण उनकी उदारता, विलक्षण प्रतिभा तथा उनके उदगारों की सत्यता आदि तो है ही, साथ ही इसका सबसे बडा कारण है उनका विस्तृत अध्ययन और उनकी सारग्रहिणी प्रवृत्ति। भारतीय संस्कृति के जिन आधारभूत तत्वों को गोस्वामी जी ने विविध शास्त्रों से ग्रहण किया था, उन्हें समय के अनुरूप अभिव्यजित करके उन्होंने अपनी अपूर्व दूरदर्शिता का परिचय दिया। उन्होंने रामकथा के जिस रूप को लिया है, वह वैष्णव-रामकथा मात्र है। यह परम्परा 'मानस रचना' के

साथ हिन्दी रामकाव्य के क्षेत्र में अवतीर्ण हुई और आज भी वही विकास-
मान है। संस्कृत-साहित्य के सुदीर्घ जीवन काल में विकसित इस परम्परा
की जडें बहुत गहरी हैं।

तुलसी जैसे लोकद्रष्टा द्वारा ग्रहण की गई यह परम्परा ही हिन्दी
साहित्य में आगे चल कर अपनाई गई। इस दृष्टि से हिन्दी रामकथा क्षेत्र
में लोक कल्याणकारी रूप के प्रतिष्ठापक गोस्वामी जी की देन अमर है।

तुलसी ने जो कुछ लिखा 'स्वांतः सुखाय' लिखा। उपदेश देने की
अभिलाषा अथवा कवित्व प्रदर्शन की कामना से जो कविता की जाती है
उसमें आत्मा की प्रेरणा न होने के कारण स्थायित्व नहीं होता। कला का
जो उत्कर्ष हृदय से सीधी निकली रचनाओं में होता है वह अन्यत्र मिलना
असंभव है। गोस्वामी जी की यह विशेषता भी उन्हें हिन्दी रामकथा धारा
में शीर्षासन पर ला रखती है। एक ओर तो वे काव्य चमत्कार का प्रदर्शन
करने वालों से सहज में ही ऊपर आ जाते हैं और दूसरी ओर उपदेशों
का सहारा लेने वाले भी उनके सामने नहीं ठहर पाते। कवित्व की दृष्टि
से भी उनका क्षेत्र अन्य रामायणकारों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। उनके
काव्यमय उद्गार सत्य और सबल होने के साथ साथ विशदता और व्यापकता
को भी अपने में संजोये हैं।

तुलसी की महत्ता का प्रधान आधार 'मानस' है जो समूची भारतीय
संस्कृति के उज्ज्वल रूप का दर्पण है। हिन्दी रामकाव्य क्षेत्र में उनका
यही वह अनुपम ग्रंथ है जिसके गौरव के साथ साथ उनका गौरव भी अभिन्न
रूप से सम्बद्ध है। जनता के सामान्य एवं विशिष्ट वर्गों में तुलसी की
लोकप्रियता का प्रधान आधार यही ग्रन्थ रहा है। हिन्दी रामकथा क्षेत्र में
'मानस' के प्रणयन के संदर्भ में तुलसी की प्रतिभा और काव्यकला इतनी
सर्वोत्कृष्ट प्रमाणित हुई है कि उनके बाद किसी भी कवि की रामचरित्
सम्बन्धी रचना 'मानस' की समानता में उत्कृष्टता एव प्रसिद्धि प्राप्त न
कर सकी। 'मानस' के रूप में उन्होंने रामभक्तों को एक सार्वभौमिक एव
सार्वकालिक अक्षय निधि देकर कृतार्थ कर दिया।

तुलसी केवल रामभक्त ही नहीं अपितु लोकद्रष्टा, जागरूक, विचारक
और सामाजिक मनोविज्ञान के गहरे पारखी थे। लोकहित का उन्हें पूर्ण
ध्यान था। वे जानते थे कि जबतक लोक-मर्यादा का पूर्ण पालन नहीं

होगा तबतक जन-कल्याण असम्भव है। मर्यादा के अभाव में लोक-व्यवस्था उत्पन्न होना आकाश-कुसुम की कल्पना के समान निरर्थक है। यही कारण है कि उनके 'मानस' में एक भी पंक्ति ऐसी आपको नहीं मिलेगी जिसमें मर्यादा का उल्लंघन किया गया हो। उनके राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, वे पूर्ण मानव हैं। मानव के सुख दुःख, राग-विराग की सम्पूर्ण भावनाएँ उनमें हैं तुलसी ने जनता के मनोनकूल राम के रूप में एक ऐसा सम्बल प्रदान किया जिसमें शक्ति, शील और सौन्दर्य, तीनों गुणों का अद्भुत विकास और समन्वय था। राम के रूप में युग ने जनता का पूर्ण रूप देखा उनमें अपने आदर्शों का साकार एवं पूर्ण प्रतिबिम्ब देखकर लोक ने उन्हें ललककर अपना लिया। तुलसी की लोकप्रियता एवं जगत्प्रसिद्धि का यह एक प्रधान और महत्वपूर्ण रहस्य है।

हिन्दी रामकथा धारा में तुलसी के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित होने का एक अन्य कारण यह भी है कि उन्होंने 'बहुजन हिताय' और 'भक्ति प्रचाराय' ही अपने काव्यमय उद्‌गारों को वाणी प्रदान की। पांडित्य प्रदर्शन, या विद्वत्ता जतलाने के चक्कर में पड़ना न तो उन्हें अभीष्ट ही था और न ही वह पड़े ही। 'केशव' की तरह वाग्जाल, पांडित्य प्रदर्शन छन्द और अलंकारों के पचड़े में वह कदापि नहीं पड़े। यही कारण है कि जिस राम के परम पुनीत एवं पावन चरित्र पर तुलसी ने 'मानस' जैसा अमर ग्रंथ लिखकर सर्वोत्कृष्ट स्थान ग्रहण किया वही रामचरित 'केशव' के लिये छन्द और अलंकारों के प्रदर्शन की सामग्री मात्र बन के रह गया। तुलसी इस बात से भली-भांति परिचित थे कि जनता तक अपनी बात तभी सफलता और सरलतापूर्वक पहुंचायी जा सकती है जब कवि जनता की ही भाषा और काव्य के माध्यम से अपनी बात कहेगा, विद्वत्ता जतलाने के फेर में दुरूह और कठिन भाषा के प्रयोग से दूर रहेगा। अतः इसी कारण उन्होंने जन-समाज की भाषाओं - अवधी और ब्रज को अपनाया और इसी लिये उनकी प्राणवती रचनाएं उत्कृष्ट एवं सर्वगुण सम्पन्न होने के साथ साथ सर्वत्र सम्मानित हैं।

हिन्दी रामकाव्य जगत में लोक कल्याणकारी रूप के प्रतिष्ठापक गोस्वामी जी की देन निस्सन्देह अनुपम है। उन्हें हम जिस दृष्टि से चाहें देखें, वे सफल जननायक, कवि और अद्वितीय कलाकार के रूप में दिखाई पड़ेंगे। यद्यपि उन्होंने बुद्ध और कबीर की भांति कोई मत नहीं चलाया तथापि व्यापक मानवता के क्षेत्र में आज तुलसी सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ हैं।

उनका काव्य आज भी प्रत्यक्ष—अप्रत्यक्ष रूप से जनता का पथ-प्रदर्शन कर रहा है। अपनी अलौकिक काव्य प्रतिभा, सहृदयता, उदारता, मार्मिकता, भक्तिप्रियता के कारण वे जन-मन मन्दिर में आज भी शिखर पर विराजमान है। उन्हें अद्वितीय कवि, भक्त-प्रवर आदर्श समाज प्रतिष्ठापक, विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न एवं भक्त शिरोमणि कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

और अन्त में हिन्दी रामकाव्य के सर्वोत्कृष्ट एवं शीर्षस्थ स्थान पर विराजित तुलसी को इन शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं अपना लेख समाप्त करती हूँ :—

तुलसी तुमने कर दिया, जग में ऐसा काम।
राम काव्य के क्षेत्र में, है अमर तुम्हारा नाम।।
तुमने 'मानस' के रूप में, दिया है ऐसा सार।
बिन प्रयास ही ले जाए, जो भवसागर के पार।।

भारतीय संस्कृति का सजग प्रहरी-तुलसी

बदरीनाथ शास्त्री (कल्ला)

भारतवर्ष का राजनैतिक पतन प्रायः बारहवीं शती से ही प्रारम्भ होता है तथापि इसके धार्मिक तथा सांस्कृतिक पतन में बरसों लग गये। किन्तु भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर विदेशी संस्कृति तथा धर्म का पूर्णतया प्रभाव न पड़ सका। यद्यपि पारस्परिक सांस्कृतिक अदान-प्रदान होता ही रहा, तथापि भारतीय सभ्यता व संस्कृति विदेशीय शासन के अनुकूल न होने पर भी आज भी ज्यूं की त्यूं अक्षुण्ण विद्यमान है। स्पष्ट है कि भक्ति-भावना का आविर्भाव भारतवर्ष में विशेषकर तब ही हुआ, जबकि विजेता लोग यहां के विजित लोगों पर अत्याचार-दुराचार आदि किया करते थे और यहां की मूक तथा निरीह जनता उस अत्याचार के विरुद्ध उठ न सकती थी और न कोई आवाज उठा सकती थी। फलतः दमन का शिकार होकर वह अपना मानसिक अस्तित्व खो बैठी। उसके सामने भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधिभूत मातृ-शक्ति का अपमान होता था। वह इस प्रकार अवर्णनीय कष्टों को झेलती हुई दुःखमय जीवन व्यतीत करती थी उसकी विशिष्ट कलाओं का निदर्शनभूत, देवप्रतिमाओं एवं देवालयों का विध्वंस उनके सामने ही होता था। नारी जाति का जिसे वह शक्ति का प्रतीक समझती थी, उसका भी अपमानजनक विनाश यहां चारों ओर से दृष्टिगोचर होता था, जो उसके लिए असह्य था। इतना ही नहीं, हिन्दू संस्कृति के प्राण स्वरूप गो माता का वध भी उसके लिए नितान्त अक्षम्य था। इन सब उपद्रवों एवं अन्यायों की ओर देखते हुए भारतीय जनता ने ईश्वर को ही अपना आराध्य समझा तथा उसे इस कष्ट से छुटकारा पाने के लिए ईश्वर के शरण में जाना एक मात्र उचित उपाय सूझा। मानव की क्रूरता से तंग आकर भारतीय जनता ने परम पिता भगवान की अनुकम्पा को ही आवाहन देना श्रेयस्कर समझा। अतः भक्ति-काल का आविर्भाव सहज ही यहीं से आरम्भ हुआ। इस तथ्य का मनोवैज्ञानिक आधार खोजना भी कुछ कठिन नहीं; वर्तमान की कटुता में प्रायः मानव ने अतीत को मिठास की पैबन्द लगाकर इसे ग्राह्य बनाने की दक्षता दिखाई है। रामानन्द का योगदान भक्तियुग के आन्दोलन में विशेष

रूप से उल्लेखनीय है। अन्ततः उन्होंने अनन्य रूप से एकमात्र ईश्वर ही सब के लिए 'एक तथा समान आराध्यदेव' समझकर सुगम उपाय के रूप में अपनाया। यहीं से भक्ति युग का नया दौर शुरू होता है, जिसमें :- कबीर, सूरदास, तुलसी आदि ने मुख्य योगदान दिया। इन्हीं परिस्थितियों में १३१८ ई० से १६४३ ई० तक भक्ति-युग का बोलबाला रहा। इसमें चाहे कबीर हो या मीरा, चैतन्य, विद्यापति आदि सब भक्ति-काल के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। यही कारण है कि इस युग के अधिकांश कवियों ने निर्गुण उपासना को छोड़कर सगुण उपासना पर ही बल दिया है क्योंकि यह भारतीय आत्मा के अनुकूल है। यद्यपि निर्गुण उपासना का श्रेय चिरकाल से भारतवर्ष को प्राप्त हुआ था। उसके प्राचीन से प्राचीन स्तोत्र-ग्रन्थ जिनमें दार्शनिकता की विशिष्ट झलक पाई जाती है और वह भक्ति के स्तोत्र होते हुए भी विशिष्ट दार्शनिक-तथ्यों का पोषण करते हैं, जैसे कि उत्पलदेव की शिव-स्तोत्रावली, नारायण भट्ट की स्तवचिन्तामणि एवं दक्षिणामूर्ति का दक्षिणा-मूर्तिस्तोत्र एव चिद्विलास मकरन्दस्तोत्रादि। यह भक्ति के साथ साथ ही दर्शन के विशिष्ट सिद्धान्तों की ओर संकेत करते हैं। इसी तरह अनेक वेदान्त के स्वतन्त्र भक्ति-स्तोत्र भी उपलब्ध होते हैं, जिनका दार्शनिक विषय अत्यन्त उत्कृष्ट होता हुआ भी भक्ति रस से ओत-प्रोत है। मध्यकालीन भारत में दार्शनिक-भक्ति के साधन प्रायः नष्ट हो चुके थे, जिनमें विशिष्ट एव दार्शनिक भक्तिभावनाएं उपलब्ध हो सकती थीं।

उस समय की परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति व सभ्यता का सन्देश कोने कोने में फैलाना न केवल नितान्त कठिन था बल्कि असम्भव भी था। संत तुलसीदास ने अपनी पैनी दृष्टि से यह सब झांका तथा इस प्रतिकूल वातावरण को दृष्टि में रखकर हल ढूंढने का प्रयास किया एवं इस दिशा में वह सफल भी हुए। सबसे प्रथम उन्होंने अपने जीवन में राम को ही अपना इष्ट तथा आराध्यदेव इसलिए चुना कि वह उनके लिए मर्यादा पुरुषोत्तम ही न रहकर किन्तु एक देवता, एव सर्वसाधारण के लिए एक मात्र उपदेशप्रद, यथार्थ आदर्शवादी एवं अनुकरणीय चरित्र, एक राष्ट्र के सच्चे उन्नायक पुरुषोत्तम थे। इधर से भारतवर्ष विविध सम्प्रदायों तथा मतमतान्तरों एवं अनेक जातियों में विभक्त था। फलस्वरूप अनेक देवताओं तथा देवियों भैरव भैरवियों आदि का उपासना में रत था। कोई एकमात्र इष्टदेव लाखों लोगों के लिए निश्चित न था और भिन्न भिन्न उपासना पद्धतियां राष्ट्र में प्रचलित थीं, जिनकी भिन्न-भिन्न रहस्यमय उपासना प्रक्रि-

यायें दुर्गम्य तथा दुर्बोध थीं तथा जिनका प्रचार सर्वसाधारण के लिए दुर्लभ था। विजेता विधर्मी उन पूजा पद्धतियों के रहस्य मार्ग को पाखण्ड सिद्ध करके धडाधड स्वधर्म में मूक जनता को दीक्षित करते थे। यह देखकर तुलसी ने भक्ति के मार्ग के प्रकाश से सर्वसाधारण एवं मूक, त्रस्त, दलित तथा शोषित, एवं अन्धकारग्रस्त जनता को आलोकित किया। इन्हें राममंत्र के प्रभाव द्वारा अभय दान दिया और इस बात को सिद्ध किया कि सारा जगत "सिया राम-मय" है। इस तरह उन्हें आश्वासन देकर इस कष्ट से छुटकारा पाने के लिए भगवान राम को ही आराध्य देव समझा और उसी की उपासना का सहारा लेने का उन्हें उपदेश दिया। यही कारण है कि उन्हें संस्कृत का मार्ग छोड़कर उस समय पण्डित - मण्डली के बिडम्बना का पात्र होना पड़ा। पर उसकी ओर उन्होंने तनिक भी ध्यान न दिया। काशी की संस्कृत पण्डित-मण्डली के मूर्धन्य श्री मधुसूदन सरस्वती ने निम्न श्लोक लिखकर तुलसी के रामचरितमानस की प्रामाणिकता घोषित की :-

"आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमः तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता।।"

इस प्रकार तुलसी ने सर्व जन-सुगम एवं सुबोध भाषा का ही आश्रय लिया और उसी में अपनी भक्तिमय विचार धाराएँ प्रवाहित कीं। राम-सम्बन्धी भक्तिभावना की विचारधारा विस्तृत रूप में रामचरितमानस में प्रवाहित हुई है और राम को लक्ष्य रखकर अन्य फुटकल भक्ति भावना की अन्तर्मुखी विचारधारायें उनकी अन्य रचनाओं में प्रस्फुटित हुई हैं। परिणाम-स्वरूप यह करोडों भारतवासियों के धर्मग्रन्थ, बाइबल और कुरान के समान ही पावन समझा जाने लगा। यह देखकर अब्दुर्रहीम खान खाना ने इसकी प्रशस्ति में इस प्रकार कहा है : -

"रामचरितमानस विमल, सन्तन जीवन प्रान।
हिन्दुवान को वेदरूप जननहि प्रकट कुरान।।"

यह अत्युक्ति न होगी कि अब्दुर्रहीम खानखाना इसकी लोकप्रियता से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को चेतावनी दी कि मानस वेद और कुरान के स्तर पर करोडों लोगों का धर्मग्रन्थ है। इसकी पुष्टि सरजार्ज ग्रियर्सन, श्री एटकिन्स (Atkins) एफ० एस० ग्रोव्ज (Groves) जे० एम० मैकफे (J. M. Macfie) रूसी वरान्निकोव आदि

विदेशी विद्वानों ने प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है यहांतक कि ग्रियर्सन ने इसे उत्तरभारत की "बाइबल" कहा है। (The Bible of Northern India)

यह बात सर्वसाधारण से छिपी नहीं है कि रामायण की कथा हज़ारों वर्ष की पुरानी है और इसे महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है जो राम के समसामयिक थे। उसमें जो कुछ उन्होंने इस विषय में लिखा है, वही सब संस्कृत में लिपिबद्ध हुआ था। संस्कृतभाषा शनैः शनैः ह्रासोन्मुख होती गई और भारत में कई भाषायें विकसित हुईं; विशेषतः उत्तरभारत में हिन्दी ने सर्वसाधारण तक रामकथा को पहुँचाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इसी समय तुलसीदास ने अत्युत्तम ग्रन्थरत्न 'रामचरितमानस' की रचना की। इसकी भाषा उस समय प्रचलित अवधी, व्रज, तथा भोजपुरी आदि के संमिश्रण से बहुत ही मधुर और चित्ताकर्षक बनी है। अतः जनता ने सर्वसाधारण के लिए सुगम समझकर इसे अपनाया और वह अपने इन गुणों के कारण इतनी लोकप्रिय हुई कि करोडों लोगों ने इसे विशिष्ट धार्मिक ग्रन्थों में स्थान दिया। यहां तक कि इसने वेद के समान ही ऊंचा आसन धारण किया। इसमें यह सन्देह नहीं है कि इसका आधार वेद, पुराण तथा वाल्मीकि रामायण, अध्यात्मरामायण आदि हैं जैसा कि स्वयं कवि ने आरम्भ में ऊपरोक्त शास्त्रों का आभार प्रकट किया है :—

"नानापुराण-निगमागम-सम्मतं यद रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥"

रामायण लिखने का अभिप्राय तुलसी की दृष्टि में संभवतः भारत की भावी शासन की रूपरेखा संवारना था। वे चाहते थे कि भारत में रामराज्य की स्थापना हो, जो धर्मराज्य का ही पर्यायमात्र है। राम के जीवन से देश की अनेकों समस्याओं का वह समाधान करना चाहते थे। उनका ध्येय था कि राम के समान ही भविष्य में भारत के शासक न्यायशील एवं आदर्शप्रिय हो। रावण के समान आदर्शहीन तथा लोभी एवं अत्याचारी शासक न हो, जो अत्याचारों से प्रजा का शोषण करके स्वर्णमय लंका के निर्माण में ही जुट जाये।

मानस एक रूपक ग्रन्थ भी प्रतीत होता है, जिसमें राम, लक्ष्मण, सीता आदि सत्य, धर्म, शील, दया, दाक्षिण्य, आदि के प्रतीक समझे जाते हैं, जबकि रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, शूर्पनखा आदि असत्य, अधर्म, दुःशील,

अन्याय, अदाक्षिण्य, दम्भ, हिंसा, कपट आदि के ही प्रतीक हैं। इनपर सत्य आदि की विजय ही इसका लक्ष्य है अर्थात् अधर्म पर धर्म की, अन्याय पर न्याय की, दुराचार पर सदाचार की, अज्ञान पर ज्ञान की विजय भी मानस का उद्देश्य है। इसी तथ्य को तुलसी ने साधारण जनता के सामने प्रस्तुत किया है। तभी तो तदनुसार ही उनके पात्रों के चरित्रचित्रण का गठन हुआ है। रामपक्ष के पात्र सत्य और अहिंसा के मूर्तपात्र लगते हैं जबकि रावणपक्ष के पात्र दम्भ, कपट, दुराचार के मूर्त्तस्वरूप जान पडते हैं। तुलसीदास इन पात्रों के चरित्र के द्वारा जनता को सजग करना चाहते हैं कि वह न्यायमार्ग का अवलम्बन करके जगत के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो। इसमें वर्णित प्रत्येक प्रसङ्ग संसारभर के लिए अमरथाती तथा अक्षय बनकर सदा के लिए उपदेशात्मक हो सकता है। तभी तो यह सर्वकालोपयोगी एवं नित्य सनातन पुस्तक कही जा सकती है। जबकि दूसरे ग्रन्थ इसके समकक्ष होते हुए भी क्षणिक एवं विशिष्ट कालोपयोगी समझे जाते हैं। इसमें लक्ष्मण और परशुराम का संवाद वीरता का उद्भावक ही नहीं, किन्तु मूर्त्त वीररस ही नजर आता है। मन्थरा कैकयी संवाद एकमात्र दम्भ और कपट का जीता जागता ऐसा उदाहरण है, जिसकी कमी आजके युग में कम नहीं है। अङ्गदरावण संवाद में कवि ने यथार्थरूप में रावण के गंवारुपन तथा अल्हड़पन का स्पष्ट परिचय दिया है। यहां तक कि जब मारीच रावण को सीता के न हरण करने के विषय में उसे समझाते हैं, तो रावण बहुत बिगड जाते हैं और मारीच को गालियों से तिरस्कृत करते हैं। कुछ एक संवाद उदाहरण के रूप में यहां प्रस्तुत किये जाते हैं:-

सीता-राम संवाद :— यह मनोहर संवाद राम और सीता के उस समय का है, जब राम बन जाने के लिए उद्यत होते हैं। सीता भी उनके साथ जाना चाहती है। श्री राम उनको रोकते हैं। इस विषय में दम्पती का पारस्परिक संवाद बहुत रोचक तथा मधुर है। जबकि राम बनवास के कष्टों का वर्णन करते हैं, तो सीता उनका निराकरण कर वास्तविक सतीत्व एवं पतिव्रता धर्म का परिचय देती है, जिसे सुनकर राम उनको वन ले जाने में विवश हो जाते हैं।

नारद-राम का संवाद :– इसमें नारद और राम के संवाद में वृत्तियों की एकरूपता पाई जाती है।

लक्ष्मण-राम संवाद :— इसमें लक्ष्मण भक्तिभाव से ओतप्रोत है। वे सुन्दर उक्तियों से राम के साथ जंगल जाने में युक्तियुक्त तर्क उपस्थित करते हैं। इसमें कवि ने लक्ष्मण की स्वाभाविक तमोगुणप्रधान वृत्ति पर विजय व्यक्त की है, जिससे लक्ष्मण को सात्विक प्रधान वृत्तिवाला ही दर्शाया गया है।

कैकयी-दशरथ संवाद :— इसमें भी कूट राजनैतिकता का आभास मिलता है। इसमें कैकयी अधिकांश राजनीतियों का आश्रय लेती हुई नजर आती है।

भरत-राम संवाद :— मानस में अपूर्वस्थान रखता है। इसका मार्मिक तथा उत्कृष्टवर्णन मानस के अवलोकन से यूँ प्रतीत होता है कि उसने ऐसे पात्रों को संजोया है, जिनमें लक्ष्मण तथा भरत का चरित्र अच्छी तरह से निखरा है। एक ओर से लक्ष्मण उग्ररूप धारण करके अपने ज्येष्ठ भाई के अन्याय का बदला चुकाना चाहते हैं तथा कैकयी के द्वारा रचे गये षड्यंत्र को मिटाने के लिए उतारु होते हैं। वहां भरत को माता के द्वारा किये गये इस प्रपञ्च पर बड़ा पश्चाताप होता है। वह राज्याभिषक के लिए राजी नहीं होते हैं। विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि कुलगुरुओं के द्वारा समझाये जाने पर भी राज्य करने के लिए वह तत्पर नहीं होते हैं और उसे यही सूझता है कि किसीप्रकार से राम को ही रिझाकर राज्य करने के लिए आमादा करे और इसी उद्देश्य से वह वन जाते हैं। समस्त प्रजा के समेत राम को राज्य करने के लिए प्रार्थना करते हैं। लक्ष्मण के मन में प्रजा सहित भरत को आते देख विरुद्ध भावना उत्पन्न होती है और भाई से निवेदन करते हैं कि "यहां पर भी भरत हमें सुख से रहने न देगा।" परन्तु ऐसी बात न थी। भरत सच्चे भ्रातृप्रेम से एवं रघुवंश की परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ को ही राज्य प्राप्ति का अधिकार है। इसी भाव से प्रेरित होकर वह चित्रकूट में राम को वन में मिले और बहुत अनुनय विनय किया। परन्तु वह पिता की आज्ञा को न टाल सके।

इसी प्रकार सीता का विशुद्ध चित्रण पाया जाता है जबकि वह पति के साथ जाने के लिए उद्यत होती है, तो उसे पति देवर, एव सास आदि के द्वारा घर में रहने के लिए बहुत कुछ समझाया जाता है, एवं अनेक कष्टों तथा हिंस्रक जीवों की विभीषिकाओं से भी सजग किया जाता है। किन्तु उन सबकी परवाह न कर वह अपने पति के साथ बन जाने

के लिए तत्पर रहती। इस प्रकार का आदर्श भारतीय पातिव्रत्य धर्म का विशेष प्रतीक है।

हनुमान-रावण संवाद :— यह संवाद भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें महामहिमशाली तथा अपूर्व शक्तिशाली रावण के दरबार में हनुमान की निर्भीकता की स्पष्ट झलक कवि ने दर्शायी है। लगता है कि महाकवि के नाते तुलसी ने ऊपरोक्त संवादों में सफलता प्राप्त करके अपनी कवित्व प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है।

आजके युग में जबकि दया, सहिष्णुता, परोपकारपरायणता, सहानुभूति का सर्वथा अभाव है, जिसके फलस्वरूप देश प्रतिदिन उच्छृंखलता और कुनीति की ओर अग्रसर हो रहा है। इस कष्ट से बचने की एकमात्र संजीवनी केवल तुलसी की "मानस" रचना है।

मुगल शासन के मूल्यों आस्थाओं एवं आधुनिक मूल्यों-आस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि वर्तमानयुग किन-किन विपदाओं में ग्रस्त है। मानस का सन्देश ही एकमात्र इन कष्टों से बचाने का केवलमात्र सबल है। तुलसी ने सारे विश्व को राम और सीतामय ही समझा है। इसमें ऊँच-नीच, हिन्दु-मुस्लिम, आदि जातियों का प्रश्न ही नहीं उठता जैसे :- "सिया राममय सब जग जानी।"

इससे ज्ञात होता है कि मनुष्यमात्र के प्रति श्रद्धा और आदर के भाव उनके मन में कितने थे, तभी तो वे कहते हैं :—

"परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीडा सम नहीं अधमाई।"

तुलसी को पराधीनता शुरू से ही खलती थी, जबकि भारत राजनैतिक दृष्टि से अंशतः किसी हद तक स्वतन्त्र था, दूसरी ओर से सांस्कृतिक, धार्मिक एव शैक्षणिक दृष्टियों से पराधीन ही था, तभी तो उनके मुख से यूँ उद्गार निकले— "पराधीन सपनेहु सुख नाही।" इससे उनकी मार्मिक अन्तःकरण की टीस एवं राष्ट्रीयभावना प्रस्फुटित हो उठती है तथा भावो पीढियों के लिए इसमें एक ऐसा सन्देश निहित है, जोकि जनता को जागरूक बनाने के लिए नितान्त आवश्यक है।

श्रीराम ने शबरी द्वारा भेंट किये गये बेर आदि को बडे प्रेम से चखा और निषदराज केवट के साथ प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया, जो इस बात का प्रमाण हैं कि उनमें संकीर्णविचारधारा पनप न गई थी वस्तुतः उनका

दृष्टिकोण बिशाल था। वसुधा ही उनकी कुटम्ब थी। यूं तो वास्तव में देखा जाये कि "मानस" में परोपकार एवं मानवतावादी भावों की झलक स्थान स्थान पर दिखाई देती है, जिसका उद्देश्य लोककल्याण की भावना, अधर्म व अन्याय का नाश एवं न्याय व धर्मराज्य की स्थापना है। इसके उदाहरण स्वरूप बालिराम का युद्ध, जटायु से प्रेम, आदि है।

मानस में उपदेशात्मक वचनामृत का अपूर्व भण्डार है, यूं कहिए इसे वचनामृतरूपी सागर कहने में कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती है। यह ग्रन्थ अमूल्यरत्नों से भरपूर है। इसे एक रत्नाकर कहना असंगत नहीं है। इसमें जितनी बार डुबकी लगाई जाये, कोई न कोई अमूल्यरत्न उपलब्ध होता ही है, जिससे देश व समाज का कल्याण हो सकता है। सन्त तुलसीदास हमारे सामने एक उपदेशक के रूप में उपस्थित होते हैं। यूं तो उसे समाज सुधारक कहने में कोई आपत्ति नहीं है। जहां तहां उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का निरीक्षण किया, उन्हें सुधारने का भरसक प्रयत्न किया है। यही कारण है कि वह भक्तिकालीन सुधारवादी कवि माने जाते हैं। इनके "मानस" में केवल किसी जातिविशेष या वर्णविशेष, या संप्रदाय विशेष के लिए उपदेशात्मक वचनों का संकलन नहीं हुआ है, बल्कि सर्वसाधारण के लिए यह उतना ही महत्त्व रखता है, जितना कि एक विशिष्ट अग्रजन्मा ब्राह्मण के लिए। तभी तो उनके यह वचन कितने सारगर्भित तथा तथ्यात्मक प्रतीत होते हैं:—

"कीरति भणति भूति सब कोई, सुरसरि सम सब कंह हित होइ॥"

टोडरमल जोकि सम्राट अकबर के अर्थमन्त्री थे। इनके वचनों पर इतने मोहित हुए थे कि वह अन्तकाल तक भी उनके मानस का परायण किया करते थे और तुलसी को भी उनके प्रति बहुत ही मैत्रीपूर्ण सद्भावनायें थीं। इतना ही नहीं, तुलसी के वचनों में इतनी तथ्यात्मकता, स्वाभाविकता औचित्य और यथार्थता निहित है कि इनको आजकल भी करोडों लोग गाते फिरते नजर आते हैं:—

दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोडिये जब लग घट में प्राण॥
एक घडी आधी घडी आधी सी अध होय।
तुलसी सन्त समागम सज्जन दुर्लभ होय॥

कोई दिन हमें ऐसा नहीं गुजरता है जिस दिन हमें कोई न कोई दोहा, चाहे आकाशवाणी द्वारा, चाहे सन्त, साधुओं के द्वारा श्रवणगोचर न हो। इनकी रचनाओं में जयदेव तथा विद्यापति के समान कोमलकान्त पदावली ही नहीं, बल्कि इनकी प्रत्येक रचनाओं में कोमलकान्त पदावली के साथ-साथ ही भावात्मकता, ओजस्विता, तथा व्यङ्ग्यार्थपरायणता की पद-पद पर झलक मिलती है। विशेषकर मानस "तामस" के दूर करने की केवल एक अचूक औषधि ही नहीं है, बल्कि इसके परायण से अक्षय आत्यन्तिक मानसिक शान्ति भी प्राप्त होती है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने कवि की जो परिभाषा दी है। उसके अनुसार एक कवि वह होता है, जो व्यक्ति के साथ-साथ समाज या संप्रदाय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करता है, जिसका उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों का निवारण कर उसे उन्नत करना है। अतः वह आदर्शवादी पात्रों का सृजनकर कविता की वस्तु को बहुत ही उत्कृष्ट और अत्युत्तम बनाता है। तुलसीदास का नाम इसी कोटि के कवियों में आता है। भावाभिव्यंजना एवं संवेदनशीलता में तुलसी की लेखनी अत्यद्भुत शक्ति रखती है, जिसकी छाया उनके परवर्ती कवियों में आजतक बराबर पडती जा रही है।

तुलसीदास का सौन्दर्य दोनों बाह्यजगत् तथा अन्तर्जगत् में झलकता है। बाह्यजगत् के सौन्दर्य में अर्थात प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में कालिदास से पीछे न रहे। उनको 'कवितावली', 'दोहावली', 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'वैराग्यसंदीपनी' तथा 'मानस' आदि में भी कितने ही अनूठे पदरत्न मिलते हैं; जिन्हें माला के रूप में पिरोकर आज भी एक सुधारक अपने कण्ठ को विभूषित करता है।

'रामचरितमानस' एक विराट साहित्य साधना है, जिसका विषय केवल राम ही राम है। राम धर्म का प्रतीक है। रामराज्य धर्मराज्य है। इसमें भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, अपवाद, निन्दा, घूंसखोरी की कोई गुंजाइश नहीं है। रामराज्य के नामोच्चारण से ही सच्चाई, आदर्शवादिता, न्यायप्रियता, कर्तव्यपरायणता, अहिंसात्मकता का भान प्राप्त होता है। अतः रामराज्य सामूहिकरूप में इनका एकमात्र पर्याय है। यही कारण है कि तुलसी ने स्वसामयिक परिस्थितियों को अच्छी तरह से निरीक्षण कर तदनुकूल पात्रों की सृष्टि करके आदर्शनायक श्रीराम को ही चुनकर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का सफल प्रयास किया है। यह कुरीतियाँ सांक्रामिक रोगों

के समान समाज को ग्रसने को उद्यत थीं! इससे उनका ध्येय अशान्त जनता को 'मानस' के पावन विचारों से मानसिक शान्ति करना था। 'मानस' शान्ति का नामान्तर प्रतीत होता है। तुलसीदास इसमें संकीर्ण एवं समस्त परिधियों से निकलकर अनन्त में लीन होना चाहते हैं। जिसमें संकीर्णता संकुचितता एवं सांप्रदायिकता का कोई स्थान नहीं है।

इसीलिए यह ग्रन्थ संसार के किसी जाति के किसी भी पुरुष के लिए एक समान थाती है। प्रकृति को रंजन करने से राजा का नाम चरितार्थ होता है। वह रामराज्य में पूर्णतया घटित होता है। इसमें प्रत्येक प्रकार से प्रजा की हितसाधना की प्रवृत्ति यत्रतत्र पाई जाती है। प्रारम्भ से ही देखिए कि बालक राम उपद्रवकारी, आततायी राक्षसों के वध के लिए विश्वामित्र के साथ वन जाने में जराभर भी संकोच नहीं करते हैं और विश्वकल्याणकारी राष्ट्रीय यज्ञ को निर्विघ्न सम्पन्न करते हैं। आगे चलकर भी उन्होंने मारीचि, ताडका, सुबाहु एव खरदूषण आदि का वध करके प्रजा को सुख व शान्ति से समृद्ध करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है, जो रामराज्य का एकमात्र अत्युत्तम निदर्शन है तथा अन्यायी के वध करने का उत्कृष्ट उदाहरण है। कई लोग रावणादि को दम्भ कपट आदि का प्रतीक बताते हैं, जिसका संकेत हमने पहिले किया है। विश्ववेदना का निवारक, लोकमंगलविधायक, अभेदवादी आदर्शों की सृजना करने वाले गोस्वामी जी का 'मानस' सूर्य के समान भविष्य में नवोदय ही करता रहेगा। वास्तव में प्रत्येक युग में रावण अवश्य जन्म लेते हैं, परन्तु उनका समूलोन्मूलन करने वाला राम भी तभी तभी अवतार धारण करते हैं।

राम ने रावण आदि को अपना शत्रु नहीं समझा, बल्कि राष्ट्र और विश्व का शत्रु समझा। इसीलिए उसने उनका वध करके विश्व और राष्ट्र को शत्रुहीन बनाने का दृढ संकल्प किया।

अन्त में तुलसी की भक्ति का उल्लेख किये बिना यह लेख अधूरा सा लगता है। यह भक्ति का उत्कृष्ट एव मनोहर काव्य है। वह भक्ति निश्छल प्रेम का प्रवाह स्वरूप है, जिसकी गति 'मानस' में कहीं रुकी नहीं है। ब्रह्म की अद्वैतव्यापिनी शक्ति के स्वरूपभूत श्रीराम में स्वशक्तिमता एवं संवेदनशीलता का स्थान स्थान पर आभास मिलता है। यही कारण है कि उसने लोगों को पीडित देखकर लक्ष्मण के साथ साथ उनकी व्यष्टि तथा समष्टिरूप से भेंट की और पीडित एवं व्यथित जनता की अभिला-

षाओं को व्यष्टि और समष्टिरूप में ही पूर्ण किया और सब का दारुण दुःख दूर हुआ। तुलसी ने श्रीराम के अभेदवाद तथा सर्वव्यापकतावाद का बडे रोचक ढंग से वर्णन किया है जैसे :—

"यह बडी बात राम कै नाही, जिमि घट कोटि एक रवि छाही।"

इस उक्ति के अनुसार जनसमुदाय में सर्वव्यापी राम के करोडो प्रतिबिम्ब प्रतीत होते हैं, जिसतरह करोडों घडों में सूर्य का बिम्ब एक साथ पडता है उसीतरह चेतनरूपी प्रेमजल से भरे हुए जीवों के अन्दर सर्वव्यापी रामरूपी ब्रह्म का बिम्ब पडता है। इसीप्रकार सीताराम ब्रह्म और माया, शिव और शक्ति के प्रतीक हैं। इसकी अभिन्नता एवं सर्वव्यापकता बताने वाले गोस्वामी ने स्थान स्थान पर इसकी चर्चा की है। वास्तव में उनकी भक्ति में दार्शनिकता की पुट भी पाई जाती है।

'मानस' के भलीभांति अध्ययन से हमें आज के समय के अनुकूल राष्ट्रीय भावना जाग पडती है कि अन्त में अन्याय से अर्जित की हुई पूंजी से निर्मित लङ्कायें ढहजाती हैं। इस तथ्य का निरुपण 'मानस' के अध्ययन से स्पष्ट होता है।

तुलसी की दृष्टि में मानवजाति आदरणीय थी क्योंकि वह उसे राम और सीता के स्वरूप में ही देखता था। उनकी दृष्टि में ऊँच, नीच, निर्धन, सधन आदि विषमता का कोई विचार न था, जैसा कि उन्होंने कहा है :—

"वन्दे सब राम के नाते।"

ऐसा विचार रखते हुए भी उन्होंने सहृदय ब्राह्मण वर्ण को विशिष्ट आदर भाव से भांपा। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उनका ब्राह्मण वातावरण में ही पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा हुई थी। कविलोग प्रायः धनोपार्जन के लिए रचनायें लिखते हैं, जबकि तुलसीदास केवल स्वान्तः सुखाय लिखते थे। इससे पहले उनके जमाने में वल्लभाचार्य, सूरदास आदि ने किसी एक विषय को ही लेकर कविता द्वारा पुष्ट किया। परन्तु 'मानस' में हमें सर्वाङ्गीण वर्णन प्राप्त होता है। इसमें केवल वल्लभ और सूर के समान वात्सल्य और प्रेम को प्रधानता नहीं दी गई है, बल्कि 'मानस' में सभी रसों का उचित सन्निवेश तथा सामंजस्य मिलता है। जहां सूर की बाल्य लीला के वर्णन का सम्बन्ध है, वहां तुलसी उस बाल्यकाल के मनोवैज्ञानिक

वर्णन में कुछ पीछे नहीं रहे हैं। शृङ्गार, रौद्र, करुणा, हास्य आदि अंग होते हुए भी अंगीभूत वीररस को परिपुष्ट करते हुए नजर आते हैं। एवं अन्यान्य रस भी अंग होते हुए अंगीभूत अन्य किसी विशेष रस को पुष्ट करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। अतः इसे रसप्रधान काव्य कहने में कोई संकोच नहीं है। यह भारतीयता का प्रतिनिधि काव्य है क्योंकि तुलसी से कोई ऐसा विषय अछूता न रहा है, जिसका इसमें समुचित सन्निवेश न हो। भारतीय सभ्यता व संस्कृति का यह अक्षय विश्वकोश है। इसमें प्रारम्भ से ही गुरुभक्ति, पितृ-आज्ञापालन, आदर्शदाम्पत्यप्रेम, भ्रातृभक्ति, मातृसेवा आदि के अनूठे उदाहरण मिलते हैं, जो विश्व के साहित्य में प्रायः अप्राप्य है। आगे चलकर इसमें राजा के प्रति प्रजा का और प्रजा का राजा के प्रति कर्तव्य, एवं उच्छृङ्खलता अन्याय आदि विध्वंस के ज्वलन्त प्रमाण मिलते हैं। इतना ही नहीं, प्रजातांत्रिक शासन का सूत्रपात यहीं से आरम्भ होता दिखाई देता है। लोकानुरंजन के लिए प्राणों से प्यारी प्रियतमा सीता जी को त्यागकर निर्वासन का आदेश दिया जाता है, जो विश्वसाहित्य में एक अनुपम प्रजारंजन का उदाहरण है। जबकि सीता का परित्याग लोगों के अन्दर फैली हुई भ्रान्त धारणा को मिटाने के लिए एवं लोकतांत्रिक भावनाओं का सन्मान करने की दृष्टि से किया गया।

वस्तुतः मध्यकालीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के यदि कहीं एकसाथ सुन्दरस्वरूप का आभास प्राप्त होता है, तो वह केवल 'मानस' ही है। साहित्यिक रचनाओं में यह पूर्वापर आर्षचिन्तन व मनन का देदीप्यमान प्रकाशस्तम्भ ही नहीं, वरन् हमेशा के लिए एक सजग प्रहरी के सदृश भारतीय जनमानस का उद्बोधक बना रहेगा। अतः 'मानस' की उपादेयता सर्वसम्मत है।

अन्त में यह कहना अनुपयुक्त प्रतीत न होगा कि प्राचीनकाल में कश्मीर जैसे सुन्दर प्रदेश में भी रामायण का प्रचार था। इस विषय में यह प्रतीत होता है कि मट्टन और अमरनाथ के हिन्दुस्तानी यात्रियों ने इससे यहां की जनता को अवगत कराया था। आज ही तो सतारहवीं सदी की लिखी हुई 'रिसर्च विभाग' में मुझे एक पाण्डुलिपि मिली, जो उक्त बात की पोषक है।

मानस-संदेश

'रामचरितमानस' महाकवि तुलसी की कालजयी रचना है, जो सम्राट् अकबर के युग में लिखी गई है। यह महाकाव्य हमारी सांस्कृतिक प्राञ्जल भावनाओं का दर्पण है। महाकवि की यह अमर रचना समूची मानवता के लिए सौहार्द, स्नेह और भावात्मक एकता का संदेश देती है। 'मानस' के मननान्तर यह स्पष्ट हो जाता कि अज्ञान, अन्धकार और असत्य के आगे ज्ञान, प्रकाश और सत्य की सफलता और विजय सुनिश्चित है। मानव की मानवता उसकी सम्पत्ति ही नहीं, वरन् एक स्वभाविक गुण एवं प्रेम की ऐसी भावना है, जिसके कारण प्रत्येक युग में सभ्यता का दीपक आलोकित होता रहा है। फलतः रावण की आसुरी शक्तियां श्रीराम के सामने खण्डशः होती हैं क्योंकि श्रीराम का आचरण, सिद्धान्त एवं स्वीकृतपथ सचचाई तथा न्यायपरक था।

'मानस' आजकल के विक्षिप्त, विक्षुब्ध एवं अशान्त मन के लिए शान्ति एवं सुख देने वाला अजस्र स्रोत है क्योंकि एक अमोघ संदेश को आकर्षक कविता का रूप देकर इस ग्रन्थ में निहित किया गया है। 'मानस' की कविता ऐसी है जो अरनाल्ड के अनुसार "प्रत्येक युग में मनुष्य को सहारा देगी।" युद्ध का आरम्भ यथाकथञ्चित् मन मस्तिष्क से होता है। यदि मनुष्य अपनी बुद्धि को सचचाई, न्याय तथा जनकल्याण के लिए लगाता, तो संसार स्वर्गसदृश बन जाता। 'मानस' में इसी यथार्थता को विस्तृतरूप में कविता का रूप देकर प्रस्तुत किया गया है जैसे :—

"परहित सरिस धर्म नही भाई, पर पीडा सम नहीं अधमाई।।"

दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है! दूसरों को दुःख देने के समान कोई नीचता नहीं है। 'सियाराममय सब जग जानी', यह सारा ब्रह्माण्ड राम और सीता का रूप है। यानी एक ही महान् शक्ति विभिन्न रूपों में हमारे सामने है। वस्तुतः आत्मा भी परमात्मा का ही रूप है। यहां कवि के 'अद्वैतवाद' का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है।

'मानस' मानव धर्म का ज्योतिः स्तम्भ है, जिसकी जगमगाहट से सारा विश्व सदा के लिए जीवन की प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त करता रहेगा। विशेषतः आजके दलबन्दी के दलदल में फंसा सम्भ्रान्त भारतीय 'मानस' का परिशीलन करके अपना जीवनमार्ग स्वयं प्रशस्त करने में समर्थ हो सकता है। इस क्रान्ति के संक्रमण काल में भारतीय जनसाधारण को जो दिग्भ्रम हो चला है तथा किंकर्तव्यविमूढ अवस्था में इसके पठन, मनन, विमर्श एवं अनुकरण से ही हमारा वास्तविक कल्याण हो सकता है।

ARTICLES PUBLISHED IN VARIOUS JOURNALS

1. Sanskrit as source of Kashmiri Language : Proceedings and Transactions of the All India Oriental Conference, 1961 (Refutation of Grierson's view).
2. Origin and Development of Kashmiri Language with special Reference To INDO-ARYAN and INDO-EUROPEAN LANGUAGES, particularly Sanskrit, Smmaries of Papers of All India Oriental Conference, 1972
3. Kashmiri & Sanskrit : Proceedings of the first International Sanskrit Conference, Volume Two, Part One, 1972.
4. Vedic Elements in Kashmiri Language : Summaries of Papers of All India oriental Conference, 1974.
5. Sanskrit Inscriptions of Kashmir : Proceedings of the first International Sanskrit Conference, Vol. III, 1972.
6. Comprutive study of Kashmiri aad Sanskrit : Hamara Sahitya 1973 (published by J & K Cultural Academy).
7. Kashmiri Language, A New point of view : Hamara Adab 1974. (Published by J & K Cultural Academy).
8. Influence of Sanskrit on Shina : Koshur Samachar 1975.
9. Shaivism & Shiekh Noor ud-Din Valli : Alamdar 1974. (Published by Kashmir Cultural Organization.)
10. Lalitaditya-Muktapeeda, Founders of Kashmiri Culture (in press)
11. Kashmiri Language, pd Sharada Peetha Research Series, Part V.. 1971
12. Description of Kashmir in Nilmatpurana : Divya Joti, 1972.
13. Description of Kashmir in Raj Tarangini : Shiraza, 1969
14. A Famous Kashmiri poet—Bilhana : Shiraza 1969
15. A Kashmiri Historian—Kalhana : Shiraza 1969.
16. Contribution of Ramcharit Manas in the Development of the Nation : Manas Samarika, 1974.
17. Vishva Sanskrit Shatabdi-grantha, Jammu & Kashmir Rajya Bhaga (Biographies of Sanskrit scholars of Kashmir) 1966. ublished by All India Sanskrit Sahitya Sammelan, Dehli.